सरस्वती आश्रम ग्रन्थ माला ११३.

ओ३म्

अञ्जना हनुमान्

जिसमें

पति परायणा अञ्जनादेवी तथा वीर हनुमान जी
का पूर्ण जीवन चरित्र सरल और सरस
भाषा में दिया गया है।

लेखक

कविराज जयगोपा[illegible]

प्रकाशक

राजपाल, सरस्वती आश्रम, लाहौर।

प्रथमवार] नवम्बर १९२५। [मूल्य १॥)

मुद्रक—पं० महावीर प्रसाद विद्याप्रकाश प्रेस, चंगड़ मुहल्ला लाहौर।

उपहार

विषय सूची

विषय सूचि				पृष्ठ
विरह	...	...	...	१
हृदय की खैंच	...	...	...	७
मिलाप	...	...	...	१३
कुटिला चक्र	...	...	...	२५
बुरे की बुराई	...	...	...	३१
देश निकाला	...	...	...	३६
माता के घर	...	...	...	४७
दुख पर दुख	...	...	...	५६
किये का फल	...	...	...	६३
तपस्वी का आश्रम	...	...	...	७५
युद्ध से लौटे	...	...	...	८०
खोज	...	...	...	६६
पश्चाताप	...	...	...	१०६
मिलाप	...	...	...	११७
रहस्य भेद	...	...	...	१२१
महावीर वज्रांग	...	...	...	१२६
हनुमान का किष्किन्धा में जाना	...		...	१३३
सुग्रीव का दर्बार	...	...	...	१३५
हनुमान राम मिलाप		...	...	१३८
लंका जाने का विचार		...	...	१४१
समुद्र पार	...	...	...	१४४

विषय सूची

	पृष्ठ
लंका दहन	१५४
रामेश्वर का पुल सागर	१६१
सागर पार	१६३
युद्ध	१६८
मेघनाद बध	१७८
रावण बध	१८०
रावण लक्ष्मण हरण	१८२
राम लक्ष्मण की खोज	१८६
अहि रावण बध	१८९
दीवाली का दिन	१९१

भूमिका

जिस देश की स्त्रियां अच्छी दशा में होंगी, वहां के पुरुष गुणी, विचारवान, आस्तिक, तेजस्वी, बलवान, धीर, वीर और विक्रमी होंगे। आज आर्य्यावर्त देश के पुरुष विदेशियों के दास कायर, नपुन्सक, और निर्बल दिखाई देते हैं। इसका भी एक मात्र कारण यही है कि आजकल स्त्रियों में वह गुण नहीं रहे, जिन गुणों से प्राचीन स्त्रियां विभूषित थीं। सच पूछो तो देश की उन्नति और अधोगति का आधार देश की स्त्रियां ही हैं। इस समय भारत को नरक के गढ़े में से निकालने के लिए सब से पहली आवश्यकता स्त्रियों की दशा सुधारना है; और इसी उद्देश्य को सामने रख कर मैंने "अंजना हुनमान" नामक यह पुस्तक लिखी है। अंजना का पातिव्रतधर्म, अपने पतिपवनदेवका प्रेम और उसके लिए बारह वर्ष का बनवास सहन करना, बनके अंदर सैकड़ों विपत्तियों का सहन करना और अंत में फिर अपने प्रीतम से मिलना हनुमान का जन्म, उसकी वीरता, शत्रुओं का नाश करना और ऐसी ऐसी वीरता के काम करना, जिन को पढ़ कर भारत की प्राचीन सभ्यता का पता लगता है। यह पुस्तक स्त्रियों और पुरुषों दोनों के

लिए लाभकारी है। इस से पहले शकुन्तला, पतिपत्नी प्रेम तथा कई और पुस्तकें मैंने पाठक व पाठिकाओं की भेंट की हैं, जिनको आदर पूर्वक सराहा गया है। यदि इस पुस्तक को पढ़ कर थोड़े से स्त्री पुरुष भी अंजना और हनुमान के गुणों को धारण कर सकें तो मैं अपने प्रयत्न को सफल समझूंगा।

लाहौर
कीर्तिक १९८२

कविराज
जयगोपाल

कविराज जयगोपाल जी

पहला परिच्छेद ।

विरह ।

"रात्रि तारे गिनते कटती है और दिन ठंडे साँस भरते । लोग विपत्ति के समय ज्योतिषियों से ग्रह गति पूछते पर मेरे लिये यह सब व्यर्थ है, क्योंकि मेरे भाग्य के आकाशमें दुख का नक्षत्र ध्रुव होकर चमक रहा है । एक एक करके दस वर्ष व्यतीत हो गए, पर मेरे दुख का अंत नहीं हुआ । अंत तो कहाँ, मुझे अभी तक यह भी पता नहीं लगा कि मेरे दुख का कारण क्या है । ज्योतिषियों का कथन, वृद्धों के आशीर्वाद और देवताओं की पूजा अर्चना, यह सब जी पर्चावे की बातें हैं; क्योंकि मेरी दशा और उन के कथन का उतना ही अंतर है जितना उदय और अस्त का । जब मैं कुंवारी थी तो

मेरे पिता के दर्बार में बड़े बड़े ज्योतिषी और विद्वान परिडत आकर कहा करते थे कि मैं बड़ी भाग्यवती हूंगी, मेरे सुख को देख कर देवता भी ईर्षा करेंगे। पर आज यह दशा है, कि रोते रोते आँखों का जल भी सूख गया है, शरीर काँटा हो गया है गाल चिपक गए हैं और नेत्रों के कोये निस्तेज हो कर सफेद हो गए हैं। केवल प्राण बाकी हैं जिन्हें मैं " उन " के दर्शनों की आशा से बलात् रोके बैठी हूं। विधाता! क्या तूने मुझ हतभाग्या को इसी लिये जन्म दिया है कि आयु भर रो रो कर मर जाऊं।

बसन्त माला······बिचारी बसंत माला मुझे धीरज बंधाती है पर मेरा हृदय अब निराशा के बज्र से चूर चूर हो गया है। वियोग की ज्वाला से मेरा रोम रोम जल रहा है और मन पारे की न्याईं अस्थिर हुआ हुआ अपनी विचार शक्ति खो बैठा है। किसी बात को सोचने बैठती हूं तो एक साथ सैकड़ों विचार मेरे मस्तिष्क पर टूट पड़ते हैं, मानों मैं पागल हो गई हूं "।

इन्ही विचारों में पड़ी हुई इस चन्द्र बदनी सुन्दरी ने एक लंबी साँस ली। उसकी आँखों की पुतलियाँ देखते देखते पथरा गईं, शरीर झुलसा उठा, पैर थर्राए और वह घेरनी खाकर धम से फ़र्श पर गिर पड़ी।

हाँपती हुई बसंत माला कमरे में दाखल हुई और एक चीख़ मार कर उससे लिपट गई "हाय अंजना!"

——:o:——

दुःखिनी अंजना के हृदय की व्यथा कौन जान सकता है। जिस अंजना को अपने पिता के घर में कभी स्वप्न में भी दुःख का अनुभव नहीं हुआ था, जो अपने माता पिता के घर का खिलौना थी, बीसियों दास दासीयाँ और नौकर चाकर जिस को रिझाने में तत्पर रहते थे, अपने पिता की राजधानी महेंद्रपुर के राजकीय उद्यान में जो कोकिला के समान कूजन करती रहती थी, आज दस वर्ष से रत्नपुर के इस शून्य भवन में पड़ी तड़प रही है। पवन कुमार ने विवाह के पश्चात् न जाने किस अवज्ञा से इस बिचारी की सार तक नहीं ली।

वियोग और फिर पति का वियोग! स्त्रियों के लिये संसार में इस से बढ़ कर दूसरा कोई दुख नहीं। महारानी सीता ने १४ वर्ष बन के कठिन दुख सहे, पर पति के वियोग का दुख उठाना स्वीकार न किया। दमयन्ती अपने पति नल के पीछे पागलों की न्याईं घूमती फिरी। स्त्रियों की श्रद्धा, प्रेम और विश्वास का वर्णन करना किसी मनुष्य की शक्ति में नहीं है। पाठक! अंजना की करुणामय अवस्था का चित्र खैंचना हमारी कल्पना से परे है। हाँ हम इतना जानते हैं कि जिस

दिन से वह रत्नपुर के इस महल में आई है, उसने कभी अपना शृङ्गार नहीं किया। उस के भ्रमर के समान काले केश तपस्विनीयों की जटा के समान बिखर रहे हैं। जिन कपोलों के सन्मुख कभी फूल भी लजाते थे, आज पिचक कर अंदर धंस गए हैं। चिन्ता की यह दशा है कि गाल पर हाथ टेके घंटों ही चित्रवत बैठी रहती है। उस के होंटों पर कभी मुस्कराहट नहीं आई। निद्रा तो उस की आँखों से मानो उड़ ही गई है। उस के नेत्र कभी किसी ने अश्रु हीन नहीं देखे। कभी रोते रोते नींद आ भी जाय तो तनिक सा अंचल खसक जाने पर चीख़ती हुई चौंक उठती है। उस की प्यारी सहेली बसंत माला उसे धीरज देती है, पर वह भी क्या करे और क्या वह कर उस का जी पर्चाए, जब कि उसे स्वयं पता नहीं कि पवन कुमार क्यों इतने निठुर हो गए हैं, और अपनी एक मात्र पति परायणा अंजना की सुध तक नहीं लेते।

इस अंधेरी रात्रि में, जब कि महल से बाहर निकलने में डर लगता है, और कोई दूसरा मनुष्य पास नहीं, वसंत माला अंजना की इस अवस्था को देख कर फूट फूट कर रोने लगी। उसने उस के मुख पर जल का छींटा दिया और हिला हिलाकर पुकारने लगी "अंजना!......अंजना!!......" कुछ समय पश्चात् अंजना की मूर्छा टूटी। उस ने एक लंबी साँस भर कर

नेत्र खोले । उस समय उस की आँखें कमरे के चारों ओर घूमती हुई मानो किसी वस्तु को ढूंड रही थीं ।

अंजना को होश में आयी देखकर वसन्त माला का हृदय खुशी से उछल पड़ा, और उस को हाथ का सहारा दे कर उठाती हुई बोली:—

वहन ! प्यारी बहन !! उठ होश में आ, तेरी नित्य की चिन्ता न जाने क्या रंग लाएगी ।

अंजना उसी टटोलती हुई दृष्टि से बोली "क्या वे चले गए ?"

"कौन ? प्यारी कौन ! क्या यहाँ कोई आया था, जिस के भय से घबरा कर तू बेसुध गिर पड़ी ?"

अंजना—भय ! उन से भय ? बसन्त ! तुम पागल हो गई क्या ? क्या मैं उन से भय करूंगी जिन के नाम की माला जपते मुझे आज ग्यारह वर्ष हो गए । क्या आज उन के यहाँ आने पर मैं भय से घबरा जाऊंगी ?

अंजना की इन बहकी बहकी बातों को सुनकर बसंत माला डर गई । समझ गई कि अंजना की अवस्था अभी तक स्थिर नहीं हुई । उस ने उस की ठोड़ी को हिलाते हुए कहा "प्यारी ! आज तुझे क्या हो गया जो इस तरह बहकी २ बातें कर रही हो । नीचे का फाटक अन्दर से ज्यों का त्यों

बन्द पड़ा है, और मैं साथ के कमरे में रसोई बना रही हूं। तू कहती है कि वे आए थे। कौन आए और किधर से आए? बहन! जो आए होते तो मुझे पता न होता और जाने पर फिर दरवाज़ा अन्दर से क्यों कर बन्द रहता?

अञ्जना—(ठण्डी सांस भर कर) तो क्या मैं स्वप्न देख रही थी?.........हाय बसन्त, तेरा बुरा हो। तूने मेरे बने बनाए खेल को पानी के छींटे में बहा दिया (आंखें मीच कर) प्राणपति! जीवनाधार!! आर्य्य पुत्र!!! मैं भूली, क्षमा करो, आपने इस दासी को आज स्वप्न में दर्शन दे कर अपनी अपार दया का प्रमाण दिया है। नाथ! शीघ्र इस दासी को आज अपनाओ, अब अधिक सही नहीं जाती। प्यारे स्वप्न! आ! आ!! एक बार फिर आ!!! मेरे प्यारे की मोहिनी छवि! केवल एक बार आ' इन शब्दों को कहते हुए अञ्जना ने आंखें मूंद लीं, मुख पर अञ्चल ओढ़ लिया। अब परन्तु कहां, स्वप्न स्वप्न हो गया।

दूसरा परिच्छेद।

हृदय की खैंच।

गरमी के मौसम में सांझ के समय का भी एक बड़ा ही सुहावना दृश्य होता है। नगरों के अन्दर जिस समय लोग 'हाय गरमी, हाय गरमी'' चिल्लाते हैं और पखियां हाथों में लिये हुए आंब की भूख अक्क से बुझाने का यत्न करते हैं, उस समय बाहर खेतों और बनों में रहने वालों के लिये प्रकृति अपने सुखद और शीतल वायु का भण्डार खोल देती है। सूर्य भगवान अपनी प्रचण्ड किरणों को समेट लेते हैं और पक्षि आनन्द से चहचहाने लगते हैं। नदियों के जलों में मछलियां आंख मिचौनी खेलने लगती हैं, और तट वर्ती दलदलों में महान् कुकुद्म सांड लड़ते दिखाई देते हैं। अधिकार च्युत होते हुए सूर्यदेव रात्रि के अंधकार पर एक बार फिर विजय की लालसा से जाते २ दो हाथ कर जाते हैं, और आकाश मण्डल में अपने अन्तिम रक्त पात के क्षणिक चिन्ह छोड़ जाते हैं। यही समय कवियों का सर्वस्व है और चित्रकारों की लेखनी का आधार है। यह सब कुछ होता तो है परन्तु एकान्त निर्जन

प्रदेशों में ...... जहां जन समुदाय इकट्ठा होता है, प्रकृति की शान्ति टूट जाती है, पक्षि घौंसलों में दुबक जाते हैं, पशु कोसों दूर भाग जाते हैं, और मछलियां जल के गर्भ में छुप जाती हैं।

यही दृष्य आज हम रत्नपुर से छः कोस दूर दक्षिण दिशा में देखते हैं। नदी के कछार में मीलों तक खेमे ही खेमे दिखाई देते हैं। जहां तहां सहस्रों दीपकों का प्रकाश आकाशमें फैल रहा है।लाल वर्दीयों वाले जवानों और शिविर के मध्य में उड़ती हुई लाल पताकाओं को देखकर किसी को यह पूछने की आवश्यकता नहीं रहती कि यह किस सेना का पड़ाव है, क्योंकि वानर सेना की लाल वर्दी और लाल पताका आज संसार भर में विख्यात है। जवान पेट की आग बुझाने के लिये चूल्हों में आग जला रहे हैं। शिविर के बाहर नदी तट पर घोड़े नर्म नर्म घास को मुंह में दबा रहे हैं और बीसियों सैनिक कुप्पीयों में जल भरते दिखाई देते हैं, अर्थात् सब के सब अपनी अपनी धुन में लगे हैं, किसी को किसी की चिन्ता नहीं है। हां, सारे लश्कर में एक मनुष्य है जो इसय चिन्ता में डूबा हुआ प्रतीत होता है। वह लश्कर से दूर फ़ासले पर नदी के किनारे अकेला व्याकुलसा इधर उधर टहल रहा है। उस की झलकती हुई सुनहरी

झालर ही से साफ़ जान पड़ता है कि वही इस सेना का सेनापति है। सहसा उस ने एक गरम सांस लिया जिस के साथ ही उस के मुंह से निम्नलिखित शब्द निकले:-

"धिक्कार है मुझ पर और मेरी बुद्धि पर, पापी पवन, (क्योंकि यह उस का अपना नाम था) तूने एक अबला स्त्री को दुख के समुद्र में धकेल दिया, तू ने उस को भुजा को क्यों पकड़ा, यदि पीछे उसे छोड़ देना था। तुझे उचित था कि तू उस को अपनी भीषण प्रतिज्ञा उस समय बता देता, जिस समय वह अपने आप को तेरे प्रेम और विश्वास के अर्पण करने लगी थी। (आकाश में चकवा चकवी के जोड़े को उड़ता देख कर) ओ पवन! तू इन क्षुद्र पक्षियों से भी गया बीता निकला, जो इस अंधेरी रात में नदी के आर पार उड़ते हुए एक दूसरे के वियोग में अन्धे हो रहे हैं। आ! इन पक्षियों के प्रेम ने तेरे सोये हुए प्रेम को जगा दिया है। आज से पहले तू नहीं जानता था कि स्त्री के लिये पति का वियोग कैसा दुखदाई है। परन्तु अब पछताने से क्या लाभ? तू अब जाता है और, उस युद्ध में सम्मिलित होने जाता है. जहां रावण से प्रतापी राजा ने भांज खाई है। जिस वरुण ने खर और दूषण से वीर सैनिकों को बांध कर ससार के बड़े बड़े छत्रपतियों के सिंहासन हिला दिये हैं, उसे परास्त

करके वापस लौटना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है" "तो क्या पिता की आज्ञा और रावण की मैत्री को एक ओर रख कर मैं वापस मुड़ जाऊं, और जाकर उन नेत्रों को अपने हाथों से पोंछू जो बारह वर्ष से मेरे वियोग में रो रहे हैं" (कुछ सोच कर) "नहीं नहीं यह कभी नहीं हो सकता क्षात्र धर्म मुझे यह आज्ञा नहीं देता। रण के समय घर की याद! लोग सुनेंगे तो कहेंगे 'पवन कायर हो गया है" "प्रहलाद विद्याधर की सन्तान डरपोक निकली है" नहीं नहीं, यह कदापि नहीं होगा। क्षत्रिय को.............."

"कुमार की जय हो। रात्रि बहुत जा चुकी और अभी तकआप शिविर में नहीं पहुंचे। युद्ध का समय और शत्रु का सबज गह भय है। यद्यपि आपके प्रताप के सम्मुख किसी को आंख उठाने का भी साहस नहीं है पर दास का चित्त स्वभाव से ही संदेहों से भरा है, इस लिये शिविर में पधारने की कृपा कीजिये"।

कुमार अपने विचारों को अभी समाप्त भी न करने पाये थे कि मंत्री ने आकर प्रणाम की और उपरोक्त शब्दों में कुमार को वापस शिविर में पधारने की प्रार्थना की।

कुमार ने मन्त्री के इन शब्दों को सुनकर भी अनसुना

कर दिया, और अनमने से हो कर नदी तट पर पूर्ववत गुनगुनाने लगे।

अपनी बात का उत्तर न पाकर मन्त्री का माथा ठनका। स्याना था, बालपन से उसे अपने हाथों खिलाया था, और वृद्ध होने पर भी सदैव उसके साथ मित्रों के समान बर्ता था, भांप गया कि दाल में काला अवश्य है। साहस करके आगे हुआ और पूछाः—

मन्त्री—कुमार को जय हो; आज कुछ दिल बुझा हुआ प्रतीत होता है। कोई संकोच की बात न हो तो पूछता हूं कि क्या कारण है?

कुमार—(सिर उठा कर) आप आ गए, अच्छा किया इस में आप की सम्मति लेना भी उचित ही है। मन्त्री जी! कहिये, कितने दिन तक सेना का पड़ाव यहां पर और रहेगा?

मन्त्री— आपके आदेशानुसार नदी पर पुल बांधने की आज्ञा दे दी है। आस पास के पंचों को अपने २ दलों के साथ महाराज की सेना में सम्मिलित होने के लिये आज्ञा पत्र भेज दिये हैं, आशा है यह सब काम तीन दिन में ठीक हो जायगा।

कुमार—(मन में) तीन दिन का अवसर........बहुत

है। (मन्त्री को लक्ष्य करके) अच्छा, तो मैं लश्कर की कमान आप के हाथ देता हूं; और इस समय एक आवश्यक काम आ पड़ने के कारण आप से अलग होता हूं। निश्चय रखिये, आज से तीसरे दिन मैं आपके पास आऊंगा। परन्तु सावधान, मेरे यहां से चले जाने की किसी को ख़बर न हो, जिससे कि बनाबनाया खेल बिगड़ जाए।

मन्त्री—(आश्चर्य से) परन्तु क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि ऐसा कौन सा गुप्त रहस्य है जो इस विकट युद्ध काल में मुझ से छिपाया जा रहा है?

कुमार हंसे 'नहीं मन्त्री जी, आप को बताने में मुझे कभी संकोच नहीं" यह कह कर कुमार ने उन के कानों पर अपने होंठ रख दिये।

मिलाप ।

रात आधी से अधिक जा चुकी थी । चारों ओर मौन का साम्राज्य था । रत्नपुर नगर के बाहर का भाग, जो दिनभर गाड़ी घोड़ा और इक्के वालों के कोलाहल से पल भर भी चुप नहीं रहता इस समय एक सुनसान जंगल दिखाई देता था । खेतों का घास पात,बेल बूटे सब के सब सिर झुकाए घोर निद्रा में पड़े थे । इस निर्जन प्रदेश में खड़ा हुआ अंजना का सफेद महल सुख का स्वप्न ले रहा था । अंजना आज कई दिनों के पश्चात् गाढ़ी नींद में सोई थी । दिन भर की थकी मांदी बसंत माला भी निद्रा देवी के आवाहन में ऊंघ रही थी कि अकस्मात् उस के कानों में यह आवाज़ पड़ी—

"किवाड़ खोलो", "किवाड़ खोलो"

आज आधी रात गई कौन है जो दरवाजा खटखटा रहा है, इस विचार ने बसंत माला को चौंका दिया । "परमात्मा ! बचाओ ! बचाओ !! मेरी अंजना के रखवाले तुम ही हो", इन शब्दों को कहते हुए उस ने अपने कान खिड़की की ओर लगा

दिये। थोड़ी देर बाद फिर दरवाजे पर थप थप हुई, और किसी ने ज़ोर से पुकारा:—

"किवाड़ खोलो, बसंत माला! किवाड़ खोलो"

बसन्त माला ने समझा, महाराज का भेजा हुआ कोई दूत आया है। वह लपक कर सीढ़ीयों से नीचे उतरी और किवाड़ खोल दिये। परन्तु उस के मुख से मारे खुशी के एक चीख़ निकल गई, जब उस ने देखा कि स्वयं "पवन कुमार" सन्मुख खड़े मुस्करा रहे हैं।

लड़खड़ाते पाओं से बसन्त माला वापस मुड़ी और गिरती पड़ती अञ्जना के सिरहाने पहुंची। वह उस समय मारे खुशी के अपने आप से बाहर हो रही थी। दस सीढ़ीयां चढ़ने में वह इतनी हांप गई थी मानों कोसों भागती आई हो। उस ने अञ्जना को अपने कांपते हुए हाथों से हिलाया "अञ्जना! अञ्जना!! प्यारी! उठो उठो!!

अञ्जना ने एक दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए आखें खोल दीं।

"उठो प्यारी जागो, आज तुम्हारे भाग जाग उठे, कूंआं प्यासे के पास आया, तेरे मन के मनोरथ पूरे हुए"।

अञ्जना ने बसन्त माला की बातों को कुछ न समझा, और समझती भी क्या; उस के प्रीतम पवन-कुमार कभी इस मन्दिर में आयेंगे, इस आशा को तो मन से उतारे उसे वर्षों बीत चुके थे, फिर कौन सा मनोरथ है जो पूरा हुआ चाहत

है ? अञ्जना विस्मित सी होकर बैठ गई "बसंत! क्या आज तुझे नींद नहीं आती ; जो इस आध रात के समय तुझे हंसने की सूझी है। बहन! इस संसार में मुझ अभागी का मनोरथ पूरा करने वाला कौन ?

बसन्त माला—हंसी नहीं सत्य कहती हूं बहन! जिन के लिये तू दिन रात समाधि लगाए बैठी रहती है, जिन के दर्शनों के लिये तू मास में बीस दिन अनाहार व्रत रखती है, आज वे सब फल लाने वाले हैं।

अञ्जना—कुछ कहेगी व यूं ही पहेलियां बुझाएगी ?

वसन्त माला—बहन कह तो रही हूं कि कुमार......

बसन्त माला अभी कुछ और कहने को थी कि सहसा द्वार का पर्दा हिला और पवन कुमार मुस्कराते हुए अन्दर दाख़ल हुए।

अञ्जना के विशाल नेत्र द्वार की ओर लग गए। वह धड़कते हुए हृदय से खाट पर से उठी। प्रेम का ज्वार हृदय से उमड़ कर नेत्रों में छा गया। जिन नेत्रों को विरह के सन्ताप से सूखे वर्षों बीत चुके थे, इस समय सहसा जल में डुबडुबा गए। उस का हृदय, हां वह हृदय जिस के अन्दर बरसों से विचारों की उथल पुथल हो रहा था, जो हृदय एकान्त में बैठ कर यह सोचा करता था कि "वे आयेंगे तो उन को।

अपना दुख सुनाऊंगा, उन से पूछूंगा कि एक अबला को इतना दुख देना यह कहां का न्याय है, कहां की वीरता है" इत्यादि विचारों से भरा हुआ हृदय इस समय सब कुछ भूल गया। बारह वर्ष के पश्चात् आए हुए पवन कुमार के विशाल नेत्रों की एक ही दृष्टि पर, हां उस दृष्टि पर, जिस पर प्रेम और पश्चाताप दोनों एक साथ झलक रहे थे, अञ्जना का हृदय निछावर हो गया, उस की जिह्वा बन्द हो गई, लज्जा और प्रेम के बोझ से दबे हुए पाओं पृथ्वी पर इस प्रकार जम गए, मानों किसी ने ज़ोर से पकड़ लिये हों। वह चित्र के समान एक टक खड़ी रह गई।

आह! अञ्जना को इस अवस्था में देख कर पवन कुमार स्तम्भित रह गए। उस समय उनको अञ्जना का वह चित्र याद आ गया, जिसे उस के विवाह से पहले महाराज महेन्द्र राय ने अपने नेगी के हाथ भेजा था। वही छवि, ठीक वही, वह मृग के बच्चे के सदृष आकर्ण दीर्घ नयन, वही नासिका शुक के समान तीखी, वह कपोल और उन पर अंगूर के रस की झलक, बिंबा फल के समान लाल लाल वही होंट, लंम्बे और चमकीले भौंरे के समान काले केश आज भी उसी प्रकार लहरा रहे थे। उस का भोला चेहरा और छरहरी देह इस समय भी वही छवि दरसा रही थी, जिस प्रकार कि उस ने आज से बारह वर्ष पूर्व चित्र में देखी थी। पवन कुमार ने

अञ्जना को किस हृदय और किन नेत्रों से देखा, इस को वही जान सकता है जिस ने एक निर्दोष पतिव्रता स्त्री को अपनी नादानी से इतना दुख दिया हो।

अस्तु, कुमार आगे बढ़े और लड़खड़ाती हुई वाणी से बोले।

कुमार—अञ्जना..........मैंने............तुम्हें बहुत दुख दिया।

अञ्जना ने यह शब्द सुने और सुनने के साथ ही उस का हृदय भर आया। नेत्रों से आंसुओं की धारा बह निकली, और वह अधीर हो कर कुमार के पाओं में लोटने लगी। पवन कुमार का पाषाण हृदय जो आज तक कभी न रोया था, आज अञ्जना के प्रेम के आंसुओं में बह गया और वे भी बच्चों की न्याई सिसकीयां भर २ कर रो उठे।

बहुत देर तक यही अवस्था रही। जब रो धो कर दोनों के मन हल्के हुए तो पवन कुमार अञ्जना से बोले।

कुमार—प्रिये! मैंने तुम्हें बहुत दुख दिया, परन्तु यह तेरे अपने किये का फल था।

बसन्त माला इस समय उन के पास आ चुकी थी अञ्जना के संबंध में कुमार के मुख से यह शब्द सुने तो उस के

मन को एक ठेस सी लगी। परन्तु क्या कर सकती थी, एक दासी के लिये कुमार को बात काटना असम्भव था, मन मसोस कर रह गई। परन्तु अञ्जना का चेहरा तमतमा उठा, परमेश्वर जाने उस के मस्तिष्क में उस समय क्या क्या कल्पनाएं उठी होंगी। उस के नेत्र एकाएक लाल हो रहे थे। वह मन ही मन कुमार के मुख से निकले हुए इन शब्दों को दोहराने लगी 'यह तेरे अपने किये का फल था" 'मैंने कौन सा अपराध किया, जिस का मुझे भी ज्ञान नहीं है। जब से मेरा विवाह हुआ आज कुमार के पहली बार दर्शन हुए, तो फिर कौन सा ऐसा अज्ञात पाप मुझ से हुआ जिस से मेरे लिये यह शब्द कहे गये 'यह तेरे अपने किये का फल था" तो क्या विवाह से पूर्व ही मुझे दोष मान लिया गया था? परमात्मा! मेरी लाज तेरे हाथ है, भगवति वसुन्धरे! मुझ निर्दोषा को अपनी गोद में स्थान दे"

अञ्जना को इस अवस्था में देख कर कुमार मुस्कराते हुए कहने लगे।

कुमार—चलो जाने दो, गई बात पर रोने से क्या लाभ। मैं तुम्हारे उन शब्दों को भूल गया हूं जिन्होंने मेरा हृदय दग्ध कर दिया था, अब तुम भी उन शब्दों को भूल जाओ जो मेरी ओर से तुम्हें कहे गये हैं।

"कौन से शब्द ? प्राण नाथ ! कौन से शब्द मैंने आपके तिरस्कार में कहे जिन को मैं स्वयं न जानती हुई भी बारह वर्ष के लिये विरह की भट्टी में झोंक दी गई"

कुमार—प्रिये ! मैं नहीं चाहता कि मैं उन शब्दों को अपनी जिह्वा पर लाऊं जिन के एक बार कहने से तुम्हें इतनी कठोर यातना सहनी पड़ी (आश्चर्य्य से) पर क्या सचमुच तू उन शब्दों को भूल गई है ? क्या तू भूल गई है कि विवाह से १५ दिन पहले महेंद्र पुर के नज़र बाग में बैठ कर तूने अपनी सखी सहेलियों के सन्मुख मेरे विषय में क्या कहा था ओह ! कैसे कठोर शब्द थे, कितने अभिमान से भरे हुए, मैंने अपने कानों से सुने "विष के समुद्र से अमृत की एक बून्द अच्छी है" न जाने कौन सा मनुष्य अमृत का बिन्दु समझा गया, जिसके सामने मुझे विष के समुद्र की उपमा दी गई थी तेरे उस समय के उन शब्दों ने मुझपर क्या अनर्थ किया था यह मैं ही जानता हूं। तेरे मुख से निकले हुए 'विष' के शब्द ने मेरे हृदय को विषमय कर दिया और उसी विषैली अवस्था में मैंने "बारह वर्ष तेरा मुख न देखूंगा" की भीषण प्रतिज्ञा कर डाली।

अंजना अभी कुछ कहना ही चाहती थी, कि वसन्त माला के मुख से सहसा यह शब्द निकल गए "अंधेर हो गया ! अनर्थ

होगया !! कुमार! मैं सच कहती हूं आपने भारी भूल की। यह शब्द अंजना के मुख से नहीं वरन् उसकी सहेली राजमंत्री की पुत्री मनोरमा के मुख से निकले थे जो अंजना की अनुपस्थिति में उसने विद्युतप्रभ के विषय में कहे थे।

बसन्त माला के इन शब्दों ने कुमार के हृदय को चीर डाला। उनके नेत्र पृथवी में गड़ गए और मस्तक पश्चाताप और लज्जा के बोझ से झुक गया। उनके मनमें नाना प्रकार के तर्क वितर्क उठने लगे, होंठ अपने आप गुनगुनाने लगे "क्या सचमुच यह शब्द मनोरमा ने कहे थे, यदि यह सत्य है तो मैंने एक ऐसा पाप किया है जिसका प्रायश्चित्त इस संसार में नहीं है। परन्तु मैंने अपने कानों से सुना था।

सम्भव है यह शब्द मन्त्री की पुत्री के ही हों, क्योंकि वृक्षों की ओट में जहाँ मैं अंजना को देखने की लालसा से खड़ा था मुझे कुछ भी तो दिखाई नहीं देता था..........धिक्कार है मेरी बुद्धि पर, मुझे अंजना से स्वयं पूछ लेना उचित था। मन्त्री ने उस समय कहा भी था कि बिना विचारे ऐसी भीषण प्रतिज्ञा करना उचित नहीं। इन विचारों ने सहसा कुमार को शोक समुद्र में डुबा दिया।

कुमार को पश्चाताप की दशा में देखकर अंजना ने रोते हुए कहा:—

अंजना—प्राणनाथ ! क्षमा करो, मेरी सखी के मुख से ऐसे शब्द निकले, जिनसे आपको भ्रान्ति दुख और क्रोध हुआ। इसके लिये मुझे यह दण्ड उचित ही था।

अंजना के इन शब्दों ने कुमार के हृदय को और भी पान.२ कर दिया। आह ! इतनी क्षमता, इतनी श्रद्धा, इतनी स्वामि भक्ति। वे अंजना के इन शब्दों को सुनकर विह्वल हो गए। उनके नेत्रों से आंसू बह निकले। हृदय ने कहा क्षमा मांग, अपने पाप का प्रायश्चित कर और इसके लिए अभी उनके मुख से 'क्षमा' का शब्द निकलता ही था कि अंजना घुटनों के बल खड़ी उनके प्रेम की भिक्षा चाह रही थी।

———— :o: ————

अंजना के महल में आए हुए कुमार को आज तीसरा दिन है। अब अंजना का मुख पहले की तरह कुम्हलाया हुआ नहीं वरन् इस समय उसके नेत्रों में आनन्द छलक रहा है। उसके कपोल जो आज से तीन दिन पूर्व पीले हो रहे थे आज उन पर लाली सी लहरा गई है। अनावृष्टि और कड़ी धूप से जली हुई भूमि पर भरपूर वृष्टि हो जाने से जिस प्रकार वह श्यामला हो जाती है, जिस प्रकार उसके परमाणुओं से एक प्रकार की मस्त कर देने वाली सुगन्ध निकलती है, और उसकी सुन्दरता

को देख कर दर्शकों के मन मुग्ध हो जाते हैं वही सुन्दरता इस समय अंजना के शरीर पर बरस गई है, और उसका कुम्हलाया हुआ जोवन निखर आया है। जो घर वर्षों से सूना पड़ा था, जहाँ शोक और दुख का साम्राज्य था आज वहाँ चहल पहल है। प्रत्येक वस्तु अपने अपने स्थान पर शोभा दे रही है। बसन्त माला के हर्ष का तो कोई ठिकाना ही नहीं, मानो किसी कंगाल को राज्य मिल गया हो।

आज कुमार का सेना में पहुंचने का अन्तिम दिवस हैं, यही कारण है कि अंजना हंस हंस कर उनकी विदाई की तैय्यारियाँ कर रही है। परन्तु यह क्यों, जो अंजना कुमार के दर्शनों के बिना मछली की न्याई व्याकुल हो जाती, वही आज उनको हंस हंस कर विदा करती है, पाठक यदि इस रहस्य को जानने की इच्छा हो तो अंजना के मुख से निकलते हुए शब्दों को सुनिए जिनके सुनने से पवनकुमार आनन्द में फूल रहे हैं।

अंजना—प्राणनाथ! आप अकेले जाते हैं, परन्तु एक आर्य स्त्री का पति के साथ युद्ध में जाना और उनके शत्रुओं के नाश करने में सहायता देना परम धर्म है, इसी विचार से मैं बार-बार नम्रता से हठ करती हूं कि मुझे भी अपने साथ युद्ध में चलने की आज्ञा दीजिये।

कुमार--(हंसकर) तुम सत्य कहती हो प्रिये! परन्तु इस युद्ध में जहाँ रावण जैसे प्रतापी राजा भी पराजित होकर भाग आये हैं, मैं तुम्हें साथ ले जाना उचित नहीं समझता। इसी लिये मैं कहता हूं कि इस भयानक विचार को छोड़ दो जिसमें सिवा हानि के कोई लाभ नहीं है।

अंजना--परन्तु प्राणनाथ! क्या यह युद्ध उससे भी भीषण है जो महाराज इन्द्र का असुर लोगों के साथ हुआ था और जिसमें महाराज दशरथ अपनी रानी केकयी के साथ सहायतार्थ सम्मिलित हुए थे?

पवन (सकुचा कर) प्रिये! युद्ध बड़ा हो व छोटा, इसके लिये मुझे कुछ भी भय नहीं है। मैं जानता हूं कि तुम एक वीर स्त्री और वीर पिता की पुत्री हो, परन्तु एक बात है जो मुझे खटकती है, और वह यह कि यदि युद्ध लम्बा हो गया और बरस छे महीने तक सेना का पड़ाव वहीं पड़ा रहा तो तुम्हें बड़ी कठिनाई झेलनी होगी। प्राणप्रिये! तेरे नेत्रों की बदली हुई रंगत और एकाएक श्वेत हुआ२ मुख मंडल शीघ्रही होने वाली संतान रत्न की आशा दे रहा है, अतएव साथ साथ न जाकर तुझे यहीं रहना उचित है।

अंजना--(कुछ सोचकर, सलज्ज भाव से) प्राणनाथ! यदि आप को ऐसा विश्वास है तो मैं अब हठ न करूंगी और

आप की आज्ञानुसार यहीं रहूंगी, परन्तु इससे पूर्व कि आप सैन्य में वापस जाएं आप को अपनी माता के पास एक वार अवश्य हो आना चाहिये जिससे समय पर किसी प्रकार का कष्ट न हो।

पवन — प्राण प्रिये ! तुम्हारा कहना यथार्थ है परन्तु इस विकट समय में जब कि मैं महाराज की ओर से युद्ध पर भेजा जा रहा हूं, लौट कर उन को अपने यहां रहने की सूचना देना अति लज्जास्पद है। लोग क्या कहेंगे कि पवन कायर हो गया है ? इसी लोकापवाद के कारण मैंने सेना के किसी भी व्यक्ति को अपने यहां आने की सूचना नहीं दी। हां माता की सन्देह निवृत्ति के लिये मैं तुम्हें अपने हाथ की अंगूठी देता हूं और यही समय पर मेरे आगमन का प्रमाण होगी। यह कहते हुए पवन कुमार ने अपनी अंगूठी अञ्जना के हाथ में दी। अञ्जना ने अपने प्यारे के चिन्ह स्वरूप उस अंगूठी को अपनी उंगली में पहना और डब डुबाए हुए नेत्रों से बोली:-

अञ्जना — परन्तु प्राणनाथ ! इस चिर दुखिनी को कहीं फिर न भूल जाना।

कुमार ने इस का उत्तर वाणी से नहीं वरं होंटों से दिया और अञ्जना के अश्रु परिप्लुत गाल पर अपनी चिरस्मृति की मोहर लगा दी।

चतुर्थ परिच्छेद ।

कुटिल चक्र ।

"ललिता बड़ी सुन्दर लड़की है । उस के गुणों ने मेरे मन को खैंच लिया है। मैं उस के साथ विवाह की प्रतिज्ञा कर चुका हूं। उस का नाटा कद और घुङ्घराले सुनहले बाल देखते ही बतला देते हैं कि उस की प्रकृति बड़ी चञ्चल है, और ऐसी स्त्री मेरे मन पसन्द है। मैं अवश्यमेव उस का हाथ पकडूंगा, परन्तु अभी नहीं, जब तक की वह अपनी प्रतिज्ञा न पूरी कर दिखाये। जब तक कि वह अञ्जना के नेत्रों के जल से मेरे दग्ध हृदय को शान्त न कर दे ' अञ्जना ! तूने समझा था कि विद्युतप्रभ को नौकरी से माकूफ कराकर सुख से दिन काटेगी। मूर्ख स्त्री ! अपने किये पर पश्चाताप कर। मुझे राजा की सेवा से अलहदा कराकर तूने मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ा और न ही इस में मुझे कुछ दुख है क्योंकि मैं जानता हूं कि इन नौकरियों की कोई जड़ नहीं । जितना लूट सका लूट लिया। मुझ से पहले कितने आये और कितने चले गये परन्तु तेरे वे शब्द जो अभी तक मेरे हृदय को चीर रहे हैं

"विद्युतप्रभ दुराचारी मनुष्य है। राज महल की दासियों से रिश्वत लेता और उन के साथ पाप का व्यवहार रखता है" ओह! इतना अभिमान! गर्वीली स्त्री तूने मुझे दुराचारी बनाया और अपनी दासी वसन्त माला को सच्चाई की पुतली। मैं दुराचारी पहले नहीं था, पर अब हूं। अब तुझे दुःख में घुला घुला कर मारूंगा। ललिता! तेरा भला हो। यदि तू मुझे आ कर अंजना की इस कुचेष्टा को न सुनाती तो आज गर्वीली अंजना संसार को तुच्छ समझने लगती। मैं ललिता का ऋणि हूं, जिस ने मेरे अपमान की मुझे सूचना दी। वह भोली लड़की है। उसका हृदय सहानुभूति से भरा हुआ है। वह मुझ पर जी जान से मरती है। उस ने यह सब कुछ मेरे लिये किया। मैं उसे अवश्य अपनाऊंगा। (आकाश की ओर देख कर) परन्तु यह क्या? चन्द्रमा सिर पर आ गया और सप्त ऋषि तारे नीचे को लटक गये परन्तु ललिता अभी तक नहीं आई" यह कहता हुआ विद्युतप्रभ (क्योंकि यह विद्युतप्रभ ही था) तख्तपोश से उठा और खिड़की में से मुंह निकाल कर गली में झांकने लगा जिस में अंधेरा छा रहा था। विद्युतप्रभ ललिता की बाट देखता देखता घबरा गया। वह बार बार गली में झांकता और ज्यों ज्यों समय व्यतीत होता उस की घबराहट और भी बढ़ती जाती। इसी सोच

विचार में रात आधी से अधिक व्यतीत हो गई। वह निराश होकर पलङ्ग पर लेटा ही था, कि किसी के पाओं की आहट सीढ़ीयां चढ़ते सुनाई दी।

आहट के साथ ही ललिता की आवाज़ को सुन कर विद्युतप्रभ उचक कर पलङ्ग से उठा और किवाड़ खोल दिये।

ललिता आज पहली सी ललिता न थी। आज उस के मुख पर एक विचित्र सी लाली दौड़ रही थी। उस के नेत्रों में क्रोध हर्ष और अभिमान तीनों एक साथ झलक रहे थे। उस के उभरे हुए हृदय को देख कर साफ मालूम होता था कि आज कोई विशेष घटना हुई है। वह कमरे के अन्दर आई तो विद्युतप्रभ ने पूछा।

विद्युतप्रभ--ललिता ! आज इतनी देर, मैं तुम्हारी ओर से निराश हो चुका था।

ललिता--हां प्यारे ....

ललिता अभी अपनी बात कहने भी न पाई थी कि विद्युतप्रभ उस के मुह को हाथ से बन्द करता हुआ बोला।

विद्युतप्रभ--ललिता तुझे क्या हो गया ? बार बार रोकने पर भी तूने फिर मुझे प्यारा कह कर पुकारा। अभी तू कुंवारी है और जब तक हम दोनों विधि पूर्वक पाणि

ग्रहण न कर लें उस समय तक तुझे मेरा नाम ले कर पुकारना होगा।

ललिता--हां हां मैं भूल गई, विद्युत ! परन्तु मैं तुम्हें अपना भावी पति मान चुकी हूं। यद्यपि इस समय तक विधि पूर्वक संस्कार नहीं हुआ, परन्तु निस्सन्देह इस हृदय में अब दूसरे का आसन नहीं हो सकता।

विद्युतप्रभ--अच्छा अब मतलब की बात कहो, यह बताओ कि आज इतनी देर आने का क्या कारण है ?

ललिता--कारण क्या है ? यह तुम्हें अभी मालूम हो जायगा परन्तु इतना कहे बिना मैं नहीं रह सकती कि १२ वर्ष से पकड़ी हुई हरिणी आज जाल से बाहर हो रही है। अंजना आज वह अंजना नहीं रही, उस के दिन फिर गये, और वह पिछले दुखों को भूल कर फूली फूली फिर रही है।

विद्युत प्रभ--परंतु इसका कारण ?

ललिता--कारण यह कि पवन की १२ वर्ष की प्रतिज्ञा पूरी हो गयी। और वे तीन दिन और तीन रात्रि उसके पास रह कर वापस चले गए और...........

विद्युत प्रभ - (बात काट कर) कुमार अंजना के हां आए और तीन रात रहे, ललिता ! अनर्थ हो गया। हां हां तुझे इस बात का क्यों कर पता मिला ?

ललिता—पता ही नहीं, वरं मैं उसके लिये एक नया जाल भी तैय्यार कर आई हूं। परमेश्वर ने चाहा तो मैं अपने विचार में सफल हूंगी। प्यारे विद्युत! इसका पता लेना कौन सी बड़ी बात थी। यह तो तुम जानते ही हो कि आज कल मैं राजमाता के पास प्रधान दासी के काम पर नियुक्त हूं और समय समय पर उसके कान अंजना के विषय में भरती रहती हूं, जिस से आगे जाकर बहुत सी स्वार्थ सिद्धि की आशा है। और यदि यह आशा न भी पूरी हुई तो भी इस समय इतना लाभ अवश्य हुआ है कि चंपा नाम की एक बृद्ध दासी को मैंने अपने साथ इस काम में गांठ लिया है, जो गुप्त रूप से अंजना के महल की खबर सार रखने के लिये राजमाता की ओर से नियुक्त की गई है।

विद्युत प्रभ—तो यह सब हाल तूने चंपा के मुख से सुना!

ललिता—हां चंपा ने मुझे बतलाया, कि कुमार तीन दिन महल में रह कर लश्कर को वापस चले गये और अंजना के चिन्ह चक्रों से उसे गर्भ स्थिति के लक्षण भी दिखाई देते हैं।

विद्युतप्रभ—तो क्या चंपा ने राज माता को कुमार के आने की सूचना देदी!

ललिता—नहीं, राजमाता को इसका कुछ भी ज्ञान नहीं है। कुमार गुप्त रूप से आए और उधर ही से लौट गए।

चंपा राजमाता को अवश्य सूचना देती, परंतु मैंने उसे ऐसा करने से रोक दिया।

विद्युत् प्रभ—(प्रसन्न हो कर) बहुत अच्छा किया, ललिता! मैं तेरे आने से पहले ही सोच रहा था कि तू बड़ी चतुर है। सचमुच यह एक जाल है, जिस में वह उस समय गिरेगी, जब गर्भ अपने पूर्ण लक्षणों से प्रगट होगा। कुमार का अंजना को परित्याग करना और उसकी त्याग अवस्था में गर्भ स्थिति, यह एक ऐसा भयानक पाप है जिसके लिये राज माता का कोप स्वाभाविक ही है। ललिता! यह लो चंपा का पुरस्कार और उसे अपने हाथ में रखने का यत्न करते रहना।

पांचवां परिच्छेद

बुरे की बुराई ।

"ललिता ! क्या यह सत्य है कि अंजना को पांच मास से गर्भ है ?"

ललिता—हां महारानी, यह सत्य है । दासी को झूठ कहने से क्या प्रयोजन, मैंने जो कुछ चंपा के मुख से सुना, बिना किसी लाग लपेट के श्रीमती के सन्मख कह दिया ।

केतुमती— परंतु उसकी इच्छा यहां से भाग जाने की है, यह तुमने क्यों कर जाना ?

ललिता – महारानी ! बारह वर्ष से कुमार ने अंजना का मुख तक नहीं देखा, यह बात राजधानी का एक एक मनुष्य जानती है । ऐसी अवस्था में अंजना का मारे लज्जा के भाग जाना, कोई आश्चर्य्य की बात नहीं है । यही जान कर चंपा ने मेरे कान तक इस आने वाले भय की आशंका प्रगट की है । हो सकता है कि वह भागने में कृत कार्य्य न हो सके और इस लोक निन्दा से बचने का दूसरा उपाय करे; अर्थात् आत्म हत्या कर डाले ।

महारानी केतुमती ने ललिता के इन शब्दों को सुना तो सिर पीट लिया "हाय सर्वनाश ! अंजना, तूने अनर्थ किया तूने हमारे पवित्र वंश को कलंकित कर दिया। दुराचारिणि ! तूने अपने माता पिता, ससुर सास का नाक काटडाला। हा ! दुष्टे ! तू न उत्पन्न हुई होती। तू ने स्त्री धर्म को तिलाञ्जलि देकर अपने पुरुखाओं के लिये नर्क का द्वार खोल दिया। "ललिता! जाओ और कहारों को सुखपाल लाने की आज्ञा दो। मैं अभी जाऊंगी और इस कुल घातिन को ऐसी शिक्षा दूंगी कि इस देश की किसी भी स्त्री को फिर कभी ऐसा करने का साहस न हो सके।

महारानी केतुमती सुखपाल से उतर कर अंजना के भवन में पहुँची तो अंजना दौड़ कर उसके पाओं पर गिरी "माता जी ! नमस्कार करती हूं। अहो भाग्य हैं दासी के जो आज चिरकाल के पश्चात् आप के दर्शन हुए। माता जी ! मेरा चित्त आप को देखने के लिये व्याकुल हो रहा था। आज आप स्वयं आगए। वसंत माला ! माता जी के लिये आसन लाओ।

महारानी केतुमती का हृदय उस समय क्रोध से दग्ध हो रहा था। उसने अंजना के इन वचनों पर ध्यान न देते हुए रुखाई से पूछा--

केतुमती--परन्तु अंजना ! (पेट की ओर संकेत करके) यह क्या ? तेरे पेट में कोई रोग है अथवा तू गर्भवती है ?

अंजना ने लज्जा से मस्तक झुका लिया और कुछ उत्तर न दिया।

केतुमती--(क्रोध से) अरी यह क्या हुआ है ? तेरा पति तो युद्ध में गया हुआ है, और यह कहां से ? निर्लज्जा ! तूने तो हमारा सर्व नाश कर डाला।

यह शब्द नहीं थे, वरं एक वज्र था जिसने अंजना के हृदय को चूर चूर कर डाला। उसका मुख एकाएक सफेद हो गया और वह लड़ खड़ाती हुई ज़बान से बोली--

अंजना माता ! क्षमा करो, मैं निर्दोष हूं। कुमार युद्ध में जाते हुए तीन दिन यहां ठहरे। मैंने उनकी सेवा में बहुत प्रार्थना की, कि वे एक बार आप से भेंट कर जायें परंतु 'वापस लौटने से लोग मुझे कायर कहेंगे" यह कह कर उन्हों ने मेरी प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया और यह अंगूठी अपने आने की प्रमाण स्वरूप मुझे देकर चले गए। यह कह कर अंजना ने कुमार की अंगूठी को महारानी के सन्मुख रख दिया।

केतुमती—कुमार युद्ध में गए और जाते जाते तेरे पास लौट आए। घड़ी दो घड़ी नहीं तीन दिन ठहरे और घर में

किसी को खबर तक न हुई'। यह कहते कहते केतुमती के होंठ क्रोध से फड़कने लगे और वह फिर कड़क कर बोली—

केतुमती—कुल घातिन! कुछ सोच समझ कर तो कहा होता। बारह बर्ष तो तेरा उसने मुंह न देखा और युद्ध पर जाते जाते तुझे मिलने आयेगा। दुराचारिणि! तू अपनी इन चतुराइयों से मेरी आंखो में धूल झोंकना चाहती है। मैं अंधी नहीं हूं, तेरी एक एक चेष्टा पर मेरी आंख रहती है। इस असंभव कहानी को घड़ कर तू अपने इस कलंक को छिपाया चाहती है जो कभी छुपने वाला नहीं और तिस पर यह चतुराई कि यह अंगूठी देख लूं और इस पाप को यहीं छिपा रहने दूं।

वसन्तमाला— जो पास ही विस्मित सी खड़ी सब कुछ देख सुन रहीं थी; रह न सकी और सहसा बोल उठीः—

बसन्त माला—महारानी! यद्यपि दासी को आप की बात काटने का अधिकार नहीं, परन्तु फिर भी शुभचिन्तक भृत्य समय पर अपने कर्त्तव्य से नहीं चूकते, इसी विचार से मैं यह कहे बिना नहीं रह सकती कि आप का इस विषय में क्रोध करना और निर्दोष अंजना को कलंक लगाना अनुचित ही नहीं प्रत्युत अत्यन्त हानि कारक सिद्ध होगा। आप का यह कहना कि कुमार यहां नहीं पधारे अंजना पर ही

नहीं वरं स्वयं कुमार पर अविश्वास करना हैं, जो अपनी अंगूठी अपने प्रमाण में दे गए हैं। इस में तनिक भी झूठ नहीं, यह मैं इन आंखों की शपथ खाकर कहती हूं जिन्होंने उन्हे तीन दिन तक इस महल में रहते देखा है।

केतुमती--(उसी प्रकार क्रोध से) दुष्ट दासी! तेरी इस अनधिकार चेष्टा से प्रयोजन? क्या मैं नहीं जानती कि कि तू अञ्जना के साथ उस के दहेज में आई है और तुझे अपने साथ गांठ लेना इस चपल स्त्री का बांए हाथ का खेल है। बस चुप रह, यदि अब एक भी शब्द मुंह से निकाला तो तेरी खाल कुत्तों से नुचवा डालूंगी। (ललिता से) ललिता! जाओ, और अभी इन्हीं पैरों पातकी रथ ले कर आओ और इस पुंश्चली को मेरे राज्य से बाहर छोड़ आओ।

ललिता--(नेत्रों में आंसु भर कर) महारानी क्षमा करो और सोच विचार से इस विषय की जांच करो। हो सकता है कि अंगूठी सचमुच कुमार ही की ही हो, और वह आये हों। आप इसे देखें और देख कर निश्चय करें। ऐसा न हो कि इस उतावली में पीछे सब को पछताना पड़े।

केतुमती-नहीं नहीं, कदापि नहीं, यह असंभव है। कुमार का युद्ध से लौटना असंभव से बढ़ कर है। यह अंगूठी एक धोखा है।

अञ्जना—(महारानी के पाओं पड़ती हुई) माता मैं सत्य कहती हूं; यह उन्हीं की है इस में कुछ भी धोखा व छल नहीं है। इस के अन्दर उनके अपने हाथ का लिखा हुआ उन का अपना नाम है जिसे आप देखते ही पहचान जायंगी।

अञ्जना ! विश्वास घातिन अञ्जना !! तेरे लिये अब मेरे राज्य में कोई स्थान नहीं है। ललिता ! जाओ, और शीघ्र पातकी रथ को लाओ। दुराचारिन स्त्री को एक क्षण भी यहाँ रखना अपने वंश को कलंकित करना है।

अंजना--माता जी ! आप सच मानें मैं निर्दोष हूं।

केतुमती-हाँ हाँ तू निर्दोष है और यह पेट इसका प्रमाण है।

अञ्जना--माता जी ! दया करो। मैं निर्दोष हूं, आप उनके आने तक मुझे यहाँ रहने दें।

केतुमती--कभी नहीं, कदचित् नहीं। अब पाप का दण्ड भुगतना ही होगा।

अंजना--महारानी ! दया करो मेरे उदर में बालक है मुझपर नहीं तो इस बालक पर ही दया करके मुझे यहाँ रहने की आज्ञा दो, मैं निर्दोष हूं।

केतुमती--भाँड़ में जाय तू और चूल्हे में पड़े तेरा बालक जो इस पाप की बेल का विषमय फल है। (ललिता से) ललिता क्यों खड़ी हो, रथ लायगी व तू भी इसके साथ जायगी।

बसन्तमाला--महारानी ! इसका परिणाम बुरा होगा। एक निर्दोष स्त्री पर इतना अन्याय करना अच्छा नहीं। परमात्मा से डरो, और इस विकट दशा में अंजना को देशनिकला देकर अपने आप को कलंकित न करो। तुम भी स्त्री हो, अपने हृदय से पूछो कि एक स्त्री का ऐसी अवस्था में जब कि उसके उदर में बालक हो, अकेले बनों में छोड़ देना कितना भयानक कर्म है। हाँ, यदि आप कुमार के आने तक भी इसे यहाँ नहीं रख सकतीं तो महाराज महेन्द्र पर्व को पत्र लिख कर इसे इसके पिता के घर भिजवा दो, ऐसा न हो कि पीछे हाथ मल मल कर पछताना पड़े।

केतुमती- हाँ हाँ अवश्य लिखूंगी पर उस समय जब यह पतित स्त्री, जिस ने मेरे पुत्र के साथ विश्वास घात किया है, मेरे राज्य से बाहर निकल जायगी। इस हत्या को मैं क्षण भर के लिये भी रखने को उद्यत नहीं हूं, और मेरा विश्वास है कि महेन्द्र पर्व भी मेरे पत्र को पढ़ कर इसे अपने राज्य में शरण नहीं देंगे, क्यों कि वे एक धर्मात्मा राजा सुने जाते हैं।

अंजना का पवित्र और राजपूती हृदय इस से अधिक कुछ भी सुनने को तैयार न था। केतुमती के इन अपमान भरे वचनों ने उस पर तीरों का काम किया। उस का सोया हुआ आत्माभिमान जाग उठा। वे नेत्र जो अभी आंसुओं की वर्षा

कर रहे थे, रक्त के कटोरों की तरह छलकने लगे। उस का मुख मण्डल तप्त ताम्र की न्याई लाल हो उठा और वह गर्ज कर बोली।

अञ्जना— मैं तैय्यार हूं। इस घर से जहां मेरा घोर अपमान किया गया है, बन लाख गुणा अच्छा है। मैं जङ्गली जंतुओं के अन्दर रहूंगी और वही मेरे बन्धु होंगे, क्योंकि वे निर्दोष हैं, सच्चे हैं और ईश्वर के भरोसे हैं। उन में न झूठ है, न कपट है, और न इतनी निर्दयता। परमात्मा! मैं निर्दोष हूं और अब तेरी निर्दोष वस्ती में ही रहूंगी। यह कह और अञ्जना ने अपने सारे के सारे आभूषण एक एक करके उतार फैंके। केवल एक धोती जिस ने उस के सारे शरीर को ढाँप लिया था, पहन कर रतनारे नेत्रों से पालकी रथ की बाट देखने लगी।

छटा परिच्छेद ।
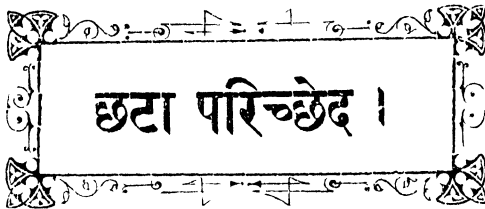
देश निकाला ।

कृष्णपक्ष, और अमावस्या की रात, दस बज चुके हैं रात्रि के अन्धकार ने संसार को अपनी काली चादर में लपेट लिया है। चारों ओर भीषण सन्नाटा छा रहा है। खेत बन नदी नाले और पर्वतों को देखो तो अन्धकार के तोदे पड़े हुए प्रतीत होते हैं, मानों प्रकृति अन्धकार उगल रही है। आकाश पर घने बादल छा रहे हैं, मानों जगत अन्धकार का एक बन्द डिब्बा है। मनुष्य पशु पक्षि सब अपने अपने आवासों में अचेत सो रहे हैं। ऐसे भयानक समय में रत्न पुर की उस सड़क पर जो सीधी महेन्द्र पुर को जाती है रथ के पहियों के चलने के शब्द के सिवा और कुछ सुनाई नहीं देता। टूटी फूटी सड़क पर हिचकोले खाता हुआ यह रथ कई कोस चल कर आधी रात के समय क्रौंच नदी के तट पर जा कर ठहर गया और रथवाहा कूद कर रथ से नीचे उतर गया।

रथ के ठहर जाने पर अन्दर से एक बारीक सी आवाज़ आई।

"अब क्या हुआ, क्या आगे सड़क ख़राब है ?"

रथवाही ने रथ का पर्दा उठाया और हाथ जोड़ कर बोला।

रथवाही—आप के उतरने का स्थान आ गया। इस से आगे दूसरे राजा की सीमा लगती है। अञ्जना ! मैं निर्दोष हूं; और मैं यह भी जानता हूं कि तुम भी निर्दोष हो, परन्तु क्या करूं महारानी की आज्ञा ऐसी ही थी।

अञ्जना चुप चाप रथ से नीचे उतर गई। बसन्तमाला उस के साथ थी। उस ने एक ठण्डी सांस भर कर रथ को वापस जाते देखा जो इस बीहड़ वन में उस को अकेले छोड़ कर शनैः शनैः अन्धकार मे लोप हो रहा था।

दिन चढ़ा तो रत्न पुर में कोलाहल मचा हुआ था। घर घर और गली गली में यही चर्चा थी, बच्चे बच्चे की ज़बान पर यहीबात थी "अञ्जना को देश से निकाला दिया गया" जितने मुंह उतनी बातें थी। कोई कहता था कि, रानी ने बड़ा अन्याय किया, बेचारी अञ्जना निर्दोष है। कोई महा-राज की निन्दा करता था, कोई इस में मंत्रियों को दोषी ठह-

अञ्जना—हनुमान्

अञ्जना चुप चाप रथसे नीचे उतर गई। वसंतमाला उसके साथ थी। **पृष्ठ नं० ४०**

राते थे। लोगों की आंखे क्रोध से लाल हो रही थीं और हृदय उछल रहे थे। अञ्जना के गुणों की चर्चा करते हुए नगर के नर नारी राजा के विरुद्ध अपना रोष प्रगट कर रहे थे। परन्तु कई मोटी तूंद वाले खुशामदी ऐसे भी थे, जो अञ्जना के विरुद्ध कह कर महाराज के प्यारे बनना चाहते थे। निदान ज़िधर देखो अञ्जना की कहानी हो रही थी। यह सब कुछ था,परन्तु व्यर्थ। लोगों का क्रोध और घर २ की चर्चा अञ्जना के वापस लाने में असमर्थ थी। सारे नगर में एक भी तो मनुष्य ऐसा न था, जो महाराज को उन के अन्याय को ओर दृष्टि दिलाता। एक भी ऐसा न था जिस को महाराज के विरुद्ध खुलमखुला हाथ ऊंचा करने का साहस होता। इस अवस्था में अञ्जना का, जो निष्कलङ्क होती हुई भी कलंकित ठहराई गई है, दुख सहने में असमर्थ भी घोर दुख में धकेली गई गई है, उस परमेश्वर के बिना जो घट घट के जानने वाला अन्तर्यामी है, दूसरा कौन है।

"पातकी रथ पर बिठा कर अञ्जना को सीमा पार कर दिया गया" इस बात की घन्टा दो घन्टे चर्चा करके नगर निवासी अपने २ कर्त्तव्य से उऋण हो गए, और बस। परन्तु हां एक मकान है जहां इस विषय पर विशेष तू तू मैं मैं हो रही है और वह राज महल के पद भ्रष्ट दारोगा विद्युत प्रभा का

है। पाठक आओ उस युगल जोड़ी की भी एक बार फिर सोर लें जिन के माया जाल में फंसी हुई बिचारी अञ्जना अपने भाग्य को रो रही है।

अपने प्यारे का मनोरथ पूरा होते देख कर ललिता विद्युतप्रभ के मकान पर पहुंची और उसे आदि से अन्त तक सारा वृत्तान्त कह सुनाया। विद्युतप्रभ ने सुना तो उछल पड़ा। प्यार से हाथ पकड़ कर बोला।

विद्युत – ललिता अब मैं तुम्हारा हूं। परमात्मा हमारे मनोरथ पूरे करने वाला है। परन्तु अभी एक कंटक और है जिसे दूर करके फिर किसी प्रकार का खटका न रह जायगा।

ललिता -- वह कौन सा ?

विद्युत —अञ्जना के प्राण ?

ललिता- अञ्जना के प्राण! तनिक खोल कर कहो तो समझूं।

विद्युत—मेरा विचार अञ्जना की इस अस्सहाय अवस्था से लाभ उठाने का है, इस दशा में जब कि वह अकेली बन बन में भटक रही होगी, माता पिता और श्वसुर सब उस के प्राणों के प्यासे हो रहे होंगे, उसे मार डालना कोई कठिन काम नहीं और भय से शून्य भी है, कहो तुम्हारा क्या विचार है ?

ललिता--तुम्हारी आज्ञा सिर माथे, जैसा चाहोगे मैं कर गुज़रूंगी।

विद्युत- मैं आज्ञा देने वाला कौन, केवल इतना पूछता हूं कि तुम्हारा विचार क्या है, कदाचित कोई और सुविधा निकल सके।

ललिता--यदि बुरा न मानो तो साफ़ साफ़ कह दूं।

विद्युत- हां हां जो कहना चाहो कह डालो।

ललिता--यदि ऐसा ही है, तो मैं कहती हूं कि इस विचार को अपने मन से निकाल दो। अञ्जना ने तुम्हें नौकरी से अलहदा करा दिया इस में कोई संदेह नहीं। परन्तु इसका फल उसे पूरा २ मिल गया है। बाहर वर्ष तक वह अपने पति से अपमानित की गई। और अब सदा के लिये देश से निकाल दी गई है। अब उसकी हत्या का जाल रचना यद्यपि कुछ कठिन नहीं है, परन्तु परमात्मा की सृष्टि में यह एक ऐसा पाप होगा जिस के लिये क्षमा का कोई स्थान ही नहीं। प्यारे! अञ्जना आगे ही मरी हुई है। मरी को मारना यह कहां की वीरता है।

विद्युत-ललिता! तुम भूल कर रही हो। ऐसे समय को हाथ से गंवा देना अपने लिये मृत्यु की सामग्री जुटाना है। यदि अञ्जना जीती रही तो हो सकता है कि

हमारे सारे के सारे भेद खुल जांय और एक दिन फांसी की रस्सी पर लटकना पड़े।

ललिता—परन्तु इस भेद का खुलना तब तक असंभव है जब तक कि हम दोनों में से कोई एक इसे जान बूझ कर न खोल दे।

विद्युत—और चंपा!

ललिता—चंपा की कौन सी बड़ी बात है, दो चार सौ उसकी मुट्ठी में दे दो और वह अभी यहां से निकल जाने को तैय्यार है।

ललिता—प्यारी! तेरा हृदय स्त्री-हृदय है, जिस में कुसमय दया का भाव जागृत हो उठा है। मैं ने इस बात को जड़ तक सोच लिया है। साहस कर, जहां इतना किया है, थोड़ा सा और कर और फिर बेड़ा पार है।

ललिता आखिर स्त्री थी। स्त्रियों का हृदय कोमल होता है। विद्युत की मोहनी छबि ने यद्यपि उस के हृदय में आसन जमा लिया था, परन्तु अंजना की हत्या के विचार से वह कांप उठी। विद्युत हाँ वह विद्युत जिस के प्रेम के वश में हुई हुई उस ने एक निर्दोष स्त्री के साथ ऐसे भयानक अत्याचार किये थे, आज अंजना की हत्या के नाम से काँप उठी। विद्युत इतना निर्दयी है, यह उसे आज

पहली बार मालूम हुआ। प्रेम के निर्मल जल में विष का एक बिन्दु मिल गया। उसे उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा मानो वह किसी राक्षस के सन्मुख खड़ी हुई है। उसे विद्युत के मुख पर स्याही छायी हुई दिखाई देती थी और चाहती थी कि तुरंत यहाँ से निकल जाए और फिर कभी इस पिशाच का मुंह न देखे। जो प्रेम वर्षों से बढ़ रहा था, एकाएक हत्या के शब्द से घृणा के रूप में बदल गया। उस ने कुछ समय तक विचार कर विद्युत को कहाः--

ललिता--बेड़ा पार हो चाहे बीच में ही डूब जाय, मैं इतनी निर्दय नहीं हो गई कि इस थोड़े से अपराध के प्रतिकार में दो प्राणियों की हत्या में सहायता दूं।

विद्युत—तो क्या तुम इस काम में सहायता न दोगी?

ललिता--कभी नहीं।

विद्युत—ललिता! इसका परिणाम बुरा होगा।

ललिता—मैं सब कुछ सहने को तैय्यार हूं।

विद्युत--देखो, तुम मेरा अपमान कर रही हो।

ललिता--मैंने अपना विचार प्रकट कर दिया, तुम इसे चाहे कुछ समझो।

विद्युत--ललिता! इतने बरसों की बनी हुई, आज

एक तुच्छ सी बात पर क्यों बिगाड़ती हो, अंजना की मृत्यु में हम दोनों का जीवन है।

ललिता—जो बिगड़ना था बिगड़ चुका। तुम इतने निर्दयी हो तुम्हारा हृदय इतना काला है, तुम्हारे गोरे मुख ने मुझे यह न समझने दिया। विद्युत! मैंने तुम्हे हृदय दे कर

पाप किया, और अब मैं पश्चाताप की अग्नि में जल रही हूं। यह कहती हुई ललिता तेजी से सीढ़ीयाँ उतर गई।

ललिता को उस तरह हाथ से जाते देख विद्युत क्रोध से अधीर हो गया। ललिता ने उसे इतना भी अवसर न दिया कि वह कुछ और सोच सकता। उस की भँवे तन गईं, और गुस्से से उस के होंट थरथराने लगेः--

" अंजना ने मेरे साथ जो व्यवहार किया, उस का फल वह भुगत रही है। परन्तु ललिता का क्या किया जाय। इस ने मुझे ऐसे समय धोखा दिया है, जब कि उस का मेरे साथ रहना अत्यावश्यक था। अस्तु, इस की मुझे कुछ पर्वा नहीं, वह मेरा साथ छोड़ती है तो छोड़े, परंतु मैं उस का पीछा नहीं छोड़ूंगा। अंजना का मैं शत्रु हूं और ललिता मेरी शत्रु बन रही है" यह कहता हुआ विद्युतप्रभ तेजी से सीढ़ीयाँ उतर गया, परंतु ललिता सी चतुर स्त्री उस के जाल में कब फंसने वाली थी।

सातवां परिच्छेद।

माता के घर।

प्रातः काल हुआ तो अंजना ने क्रौंच नदी का पुल पार किया। यहाँ से महेन्द्र पुर छे कोस की दूरी पर था। काले वस्त्र ओढ़े हुए बसन्त माला के साथ वह अपने भाग्य को इस तरह कोसती चली जाती थी "माता जब देखेगी तो क्या कहेगी, और पिताजी ने भी यदि मुझे अपने हाँ रखना स्वीकार न किया तो फिर मैं किधर जाऊंगी । (ठंडी साँस भर कर) तो फिर मुझे वहाँ नही जाना चाहिये······परंतु इस से मेरा कलंक दूर न होगा। लोग कहेंगे कि अजना सच्ची होती तो कुमार के आने तक यहाँ रहती। तो मुझे जाना चाहिये····· हाँ हाँ मैं जाऊंगी और अपनी माता के सन्मुख सारी घटना को रखूंगी। वह अवश्य मेरी सुनेगी। सास सुसर को क्या, पराई लड़कीयों का दर्द किस को होता है। अपनी माता अपनी ही होती ( ) परन्तु मेरे पहुंचने से पहले ही यदि उन को पत्र पहुंच गया, जैसा कि मेरी सास ने कहा था, तो फिर क्या बनेगा······मेरे पिता वड़े हठीले हैं। उन के मन में जो विचार

एक बार बैठ जाय. सत्य हो असत्य, फिर संसार की कोई वस्तु ऐसी नहीं जो उसे बदल सके" अन्तिम बात ने अंजना को एक बार जोर से चंपा दिया, और वह बसंत माला के कंधे पर हाथ टेक कर बड़ी कठिनता से सम्भल सकी।

बसन्त माला ने अंजना की यह दशा देखी तो उसे धीरज देती हुई बोली।

बसन्त माला – अंजना बहन! धीरज धरो। प्रारब्ध के साथ किस का बल चल सकता है।

अंजना – सच है बहन प्रारब्ध बड़ी बलवान है। परमेश्वर जाने, मैंने कौन से ऐसे कर्म किये हैं, जिन का मुझे यह फल मिल रहा है।

बसन्त माला – अदृष्ट के विषय में कौन कह सकता है बहन, परन्तु ऐसे आड़े समय में मनुष्य का धीरज धरना ही धर्म है।

अंजना – मेरी प्यारी बसन्त! आज तेरह वर्ष से हृदय पर पत्थर रखे सब कुछ सह रही हूं। परन्तु इस कलंक ने जो मुझ पर लगाया गया है मुझे कहीं का नहीं रक्खा।

बसन्त माला – सत्य है बहन, पर फिर भी परमात्मा पर भरोसा रख। सब दिन एक समान नहीं होते। भले नहीं रहे तो बुरे भी न रहेंगे। तू तो आप पढ़ी लिखी है, सब कुछ

जानती है। हरिश्चन्द्र जैसे राजा पर कैसे कैसे कष्ट आए। क्या जाने परमात्मा तेरे सत्य की परीक्षा लेते हों।

इस प्रकार ढारस बंधाती हुई बसन्त माला अजना के साथ महेन्द्र पुर के बाहर पहुंची।

हाय ! जिस महेन्द्र पुर में अंजना ने अपनी बाल्यावस्था बिताई थी, जिन सड़कों और बागीचों को देख देख कर वह फूली न समाती थी वे सरोवर जिन में रंग बिरंगे फूल खिल रहे थे, वे छोटी छोटी पहाड़ीयाँ जिन पर हरयाली लहरा रही थी आज भी उसी प्रकार शोभा दे रहे थे। ऊंचे ऊंचे भुवनों का प्रतिबिम्ब नगर के बड़े तालाब में उसी प्रकार आज भी डोल रहा था; जिस प्रकार कि आज से तेरह वर्ष पहले वह देखा करती थी। सब कुछ वही था, परन्तु अंजना का हृदय पहला सा नहीं था। जिन वस्तुओं को देख कर वह प्रसन्न हुआ करती थी, आज वे सब उस को खाने दौड़ती थीं। काले वस्त्र उस के हृदय को चीर रहे थे। अस्तु, वे अपने पिता के द्वार पर पहुंची। उस समय उस के नेत्र डुबडुबा रहे थे और हृदय धड़क रहा था।

राजमाता को अंजना के आने का संदेश मिला तो वह दौड़ी दौड़ी आई। दास दासीयाँ अंजना के दर्शनों के लिये उत्कंठित चित से उछल पड़ीं। सारे घर में आनन्द की एक लहर दौड़

गई । "अंजना आ गई" "अंजना आ गई" इन शब्दों ने सारे महल को चौंका दिया। परन्तु यह सब आनन्द दो क्षण का था।

राज माता अंजना के पास आई तो विस्मित सी खड़ी रह गई। उस के एकाकी आगमन और काले वेष ने माता को आश्चर्य्य और दुख में डाल दिया।

अंजना ने माता को देखा तो उस का हृदय उबल पड़ा। वह अपने आप को सम्भाल न सकी और दौड़ कर मां की कमर के साथ लिपट गई।

" माता मैं निर्दोष हूं "

माता—पुत्रि ! यह मैं आज क्या देख रही हूं। तेरा यह काला वेष ! हाय ! हाय !! बेटी तूने अनर्थ किया।

अंजना—(रोकर) माता मैं निर्दोष हूं। मेरे खोटे भाग्य हैं और क्या कहूं। मुझ निरअपराध पर दुराचार का कलङ्क लगा कर मुझे निकाल दिया गया। हाय माता ! मैं कहीं की न रही। परमेश्वर जानता है मैं निर्दोष हूं। मेरी सास ने मुझ पर घोर अन्याय किया जो मुझे इस विकट अवस्था में कलङ्क लगा कर देश निकाला दे दिया। माता ! मैंने बहुत बिनती की, लाख रोयी, पर सब व्यर्थ। मैंने उतने समय के लिये वहां रहने की आज्ञा मांगी जब तक कि वे आप युद्ध से लौट कर न आवें, पर उस कठोर चित्त ने मुझे गल हत्थी देकर इन काले वस्त्रों से बाहर निकाल दिया। (रोती हुई) हाय

माता ! मेरा घोर अपमान किया गया। जी तो चाहता है अभी विष खाकर मर जाऊं पर इस (उदर की ओर संकेत करके) को क्या करूं जो उन्ही की धरोहर है।

अञ्जना के करुणा विलाप को सुन कर राजा माता का आग सी लग गई, और पुत्री के प्रेम ने उस अग्नि पर घृत का काम किया। उसने अञ्जना के आंसु पोंछते हुए उस का मस्तक चूमा और बोली।

माता—बेटी ! न रो तेरी बला रोवे। मैं अपने आप समझ लूंगी। सास को क्या, उस की अपनी बेटी होती तो मैं देखती कि किस तरह उसे निकाल देती। हाय हाय ! इतनी कठोरता तो चण्डालों में भी नहीं होती (प्यार देकर) तू यहां रह, पवन आयंगे तो मैं उनसे निबट लूंगी। (महाराज को आते देख कर) ले तेरे पिता भी आ रहे हैं।

राजा महेन्द्र सिंह आए तो अञ्जना रो कर उन्हें लिपट गई। परन्तु दिनों का फेर, जब बुरे दिन आते हैं अपने बेगाने हो जाते हैं। जिस पिता ने अञ्जना को कभी अपनी आंखों से ओझल नहीं किया था अञ्जना के रत्न पुर जाते समय जिस के नेत्रों ने झड़ी वांध दी थी, आज तेरह वर्ष पीछे मिली हुई उसी अञ्जना को झटक कर उन्होंने अलग हटा दिया और बोले।

महेन्द्र राय—अंजना ! अंजना !! मैं क्या समझता था पर तूने क्या कर दिखाया। (जेब से पत्र निकाल कर)

दुश्शीले ! मैं समझता था कि यह पत्र किसी शत्रु ने मुझे दुःख देने के लिये भेजा है अंजना कभी ऐसी नहीं हो सकती। परन्तु मेरा विश्वास झूठा निकला, और मैं समझता हूं कि मेरे लिये संसार में खड़े होने के लिये कोई स्थान नहीं रहा। अंजना ! तू जन्मते ही क्यों न मर गई। सास सुसर का नाक काट कर अब यहां मेरा नाक काटने आई है ? तुझे कुछ लज्जा होती तो यहां क्यों आती। जा जिधर तुझे तेरी प्रारब्ध ले जाय उधर चली जा। मेरे राज्य में तेरे लिये कोई स्थान नहीं है।

राज माता—स्वामिन् ! आप क्या कह रहे हो, कुछ सोचो तो सही। अञ्जना पर झूठा कलङ्क लगाया गया है। मेरी पुत्री ऐसी नहीं है। पवन कुमार आँयगे तो मैं देखूंगी। सास सुसर को क्या, पराई लड़कियों को जितना चाहें दुख देलें।

महेन्द्र राय—(क्रोध से बात काट कर) बस········ इस से अधिक मैं नहीं सह सकता। एक तो चोर दूसरे चतुर, अपनी लड़की के दोषों को छिपाना और फिर उल्टा सास सुसर को झूठा कह कर उस का साहस बढ़ाना यह उचित नहीं है। क्या रत्न पुर के महाराज ऐसे मूर्ख और निर्दयी हैं जो अपनी बहु को इस तरह कलङ्कित करके आप बदनाम होंगे (अंजना को) अंजना ! मैं तेरे अपराध को कभी क्षमा नहीं कर सकता. और कदाचित् तुम निर्दोष भी हो तो

भी मैं इस अवस्था में तुम को अपने यहां रखने को तय्यार नहीं हूं जब कि तुझे तेरे सुसराल में से निकाल दिया गया है।

अञ्जना की रही सही आशा भी टूट गई। उसने पिता के पाओं पकड़ लिये। और फूट फूट कर रोने लगी "पिता जी मैं निर्दोष हूं......आप मेरी दशा पर विचारकरें...... और उन के आने तक मुझे यहां रहने दें, इस से अधिक मैं कुछ नहीं चाहती।

राज माता—हां हां कुमार आयेंगे तो झूठ और सत्य का निर्णय हो जायगा। मेरी पुत्री कभी ऐसी नहीं हो सकती। अंजना मेरे उदर में रही है मुझ से बढ़ कर दूसरा कौन जान सकता है।

महाराज –(क्रोध से) अंजना तेरे उदर में रही है तो तो भी उस के साथ निकल जा। अंजना दुराचरिणी निकलेगी, यदि इस का पता मुझे पहले होता तो मैं इसे उसी समय मार डालता जब यह उत्पन्न हुई थी। इस ने मेरे लिये संसार को अपमान का स्थान बना दिया। इस ने मेरी आज तक की बनाई हुई बुढ़ापे में बिगाड़ दी (अंजना को क्रोध से झटक कर) जाओ जाओ. मैं तुम्हारे लिये कुछ नहीं कर सकता। महेन्द्र अपनी सन्तान के लिये क्षत्रियों की मर्य्यादा नहीं तोड़ सकता, प्रेम के लिये न्याय का गला नहीं घोंट सकता।
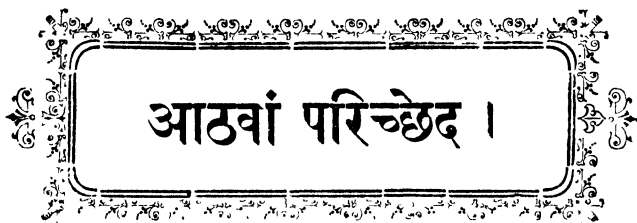
आठवां परिच्छेद ।

बनवास ।

महेन्द्र पुर से बीस कोस दक्षिण दिशा में एक प्रसिद्ध विकट बन है। इस बन की प्रसिद्धि इस लिये नहीं कि लोग इस की शोभा देखने के लिये प्रायः जाते हैं प्रत्युत इस लिये कि इस के अन्दर आज तक कदाचित ही कोई मनुष्य गया हो। इस गह्वर बन की भयंकरता को सुन कर बड़े बड़े जियाले कानों पर हाथ धरते हैं। कदाचित कोई बटोही भूल से इस इस के अन्दर जा फंसा. तो फिर उसका निकलना कठिन हो गया। इस के दोनों ओर फैला हुआ गृद्ध कूट नाम काला पहाड़ ऐसा प्रतीत होता है मानों इस बन का महांकाय चौकीदार है, और हर समय वायु से हिलती हुई वृक्षों की शाखा रूप भुजाओं से पथिकों को मनाही करता है कि अन्दर मत जाओ, यह बन बड़ा भयानक है। वर्षा ऋतु में इन्द्र भगवान जब इस की कठोर देह पर असंख्य जल बाणों की वर्षा करते हैं तो रक्त जल वाले सैंकड़ों नाले बहते हैं उस समय ऐसा जान पड़ता है मानों कोई महा घोर असुर पीड़ा

से कराह रहा है और उस के शरीर पर से बाणों की मार से लहु की नदीयां बह निकली हैं। बन के पश्चिम भाग में तुंगभद्रा नदी बहती है और पर्वत से उतरे हुए नाले बन के अन्दर से बहते हुए इसी नदी में जा गिरते हैं। बन क्या है एक भीषण घाटी है जिस में दिन दोपहर अन्धकार छाया रहता है, और सिंह व्याघ्र चीते सिंह आदि जन्तु लपलपाये फिरते हैं।

बेचारी अंजना महेन्द्र पर से निकल कर इस बन में फंस गई है। दोनों ओर ऊंचे ऊंचे पर्वत और एक ओर नदी, किधर जाय और कहां ठहरे यह उस की समझ में न आता था। सायंकाल के छय बज चुके थे, और इस बन में पूरी रात्रि होचुकी थी। उसने सोचा कि जहां तक हो सके इस बन से शीघ्र पार हो जाना चाहिये इसी विचार से उस ने बसन्त माला का हाथ पकड़ा और वे दोनों तेज़ी से आगे चलीं। परन्तु अभी थोड़ी दूर आगे गई होगी कि बसन्त माला का पांओं पृथ्वी के अन्दर फंस गया। उस ने ज़ोर से चीख़ मारी "हाय हाय मैं गई, बहन अंजना, आगे मत आना बड़ी दल दल है" अपने आप को दल २ में फंसी हुई देखकर उस ने उचक कर पाओं को बाहर निकाला और कीच से लतपत हुई हुई वापस मुड़ी।

वसन्तमाला को इस दशा में देखकर अंजना ने दौड़कर उसका हाथ पकड़ा और कहा—

अञ्जना – तो अब क्या करना चाहिये सखि ! रात्रि का अंधकार फैल गया है और आगे की भूमि दलदल से भरी हुई है

वसन्तमाला – तो बहन आगे चलना उचित नहीं। मेरी इच्छा तो यही है कि यहीं किसी पेड़ के नीचे रात काट दो।

अञ्जना—(आकाश की ओर उंगली करके) परन्तु बहन ! रात को यहां ठहरना भय से शून्य नहीं है। देख बादल किस तरह उमड़ आये हैं, यदि यह बरस गए तो पहाड़ी नालों के जल में सारा वन डूब जायगा।

वसन्तमाला—परन्तु यहां ठहरने के सिवा और क्या हो सकता है, रास्ता तो कोई है नहीं·······

अभी यह दोनों इस प्रकार सोच ही रही थीं कि वृक्षों की टहनियां ज़ोर से हिलने लगीं।

"आंधी" "आंधी" वसन्तमाला ! देख किस वेग से आंधी आरही है। यह कहती हुई अंजना बसन्तमाला के कंधे को पकड़ कर खड़ी हो गई और वृक्ष को थामे हुए यह दोनों इस अकस्मात् तूफ़ान के गुज़रने की प्रतीक्षा करने लगीं।

तूफ़ान का वेग बढ़ने लगा। भूमि आकाश में वायु देवता गर्जने लगे। बड़े बड़े वृक्ष अड़ड़ड़ धम अड़ड़ड़ धम के शब्द से टूट टूट कर पृथवी पर गिरने लगे। इस भीषण वृक्ष निपात का दृश्य अंजना ने भला कब देखा था। वह सहमी हुई हिरनी की तरह वसंतमाला के साथ चिपट कर बैठ गई।

वायु के झपाटे उन दोनों को वृक्ष समेत भूमि से उठालेना चाहते थे। काले पहाड़ पर टकराता हुआ वायु इस ज़ोर से कानों को फाड़े डालता था, मानो कोई राक्षस चिंघाड़ रहा हो। धीरे धीरे तूफान का वेग कम हुआ तो उनके मन में धीरज हुआ। परन्तु कहावत है "विपत्तियाँ जब आती हैं तो चारों ओर से से आती हैं' अभी तूफान पूर्ण रूप से थमा भी न था कि टप टप करके बड़े बड़े जलकण गिरने लगे। आंधी से अपने आप को बचाने के लिये इन्हों ने जिस वृक्ष का आश्रय लिया था, वर्षा के आने पर उसने भी कोरा जवाब दिया। पत्तों में से छन छन कर जल की बूंदें उनके ऊपर गिरने लगीं। उनके कपड़े बेतरह भीग गई और पर्वतीय शीतल वायु से वे दोनों बेत की तरह कांपने लगीं। इस समय वे दोनों भयंकर विपत्ति में थीं, घटाटोप अंधकार में मूसलाधार जल आकाश से बरस रहा था। सारा बन पहाड़ी नालों से जल मग्न हो रहा था, और विद्युत का मुहर मुहर चमत्कार उनके हृदय और नेत्रों की गति को बंद कर रहा था। वे तपस्विनियाँ एक दूसरे को लिपट कर अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगीं। एक पहर तक यही दशा रही और उसके पश्चात् तूफ़ान धीरे २ थम गया।

विपत की मारी अंजना ने वसंतमाला के साथ जिस किसी तरह उस वृक्ष की जड़ पर रात्रि व्यतीत कर दी। दिन चढ़ा तो वे आगे आगे बढ़ीं। इन बेचारियों ने—जो महलों में

पलीं थीं, और मखमली गद्दों से पाओं नीचे रखना जानती ही न थीं, भला ऐसी विकट विपत्ति कब देखी थी। बन की कंटीली भूमि ने उनके पाओं को लोहू लुहान कर दिया था, रात्रि भर जागने से इनके शरीर अकड़ रहे थे और भूख से कलेजा मुंह को आरहा था।

जिस किस तरह वे तुंगभद्रा के तट पर पहुँची। इस समय भी नदी अपने पूरे ज़ोरों पर थी। नदी में स्नान करके अञ्जना और उसकी सखी संध्योपासना में प्रवृत्त हुईं और परमात्मा के चिंतन में जो दुखियों के दुख दूर करने वाला है लग गईं।

नवां परिच्छेद

दुख पर दुख।

"ललिता मेरे वश में होकर रहेगी अथवा अञ्जना के साथ उसको भी इस संसार से उठा देना होगा। अञ्जना का मैं शत्रु हूं और ललिता मेरी शत्रु बन रही है"

पाठक! दरोगा विद्युतप्रभ के इन शब्दों को भूले न होंगे जब कि वह अपने मकान से ललिता की खोज में निकला था। परंतु ललिता वहाँ कहाँ थी जो उसके हाथ आती। वह उस तंगगली से निकल कर सीधी राजमहल में पहुंची। परन्तु वह खूब जानती थी कि विद्युत प्रभ यद्यपि अब राज महल से निकाल दिया गया है परन्तु उसके सम्बन्ध अभी तक महल की दासियों के साथ पूर्ववत् बने हुए हैं। यही सोचकर अपनी सारी वस्तुओं को ठौर ठिकाने लगाकर दिन निकलने से पहले ही उसने महेन्द्र पुर का रास्ता लिया। बारह वर्ष तक जिस अञ्जना के लिये वह मृत्यु के सामान जुटाती रही, आज उसी के लिए उसका हृदय तड़प उठा। मानवी आत्मा का शुद्ध रूप चमक उठा। ईर्षा और द्वेष से दबी हुई सात्विक वृत्तियाँ आज सहसा जागृत हो उठीं। इस समय उसका हृदय अंजना के प्रेम और पश्चाताप के

समुद्र में डूब रहा था। अंजना के साथ किये हुए दुर्व्यवहार उसे एक एक करके याद आने लगे उन्हों ने उसके तन को आग सी लगा दी, उसके रोम रोम से चिंगाड़ियाँ सी उठ रही थीं। मानों वह अपने पापों से आप ही जलने लगी थी। ललिता के पाँव इस समय तेज़ी से उठ रहे थे। प्रेम और पश्चाताप की अग्नि से उसके पापों का बोझ जल रहा था और मानो इसी से हल्की हुई हुई वह मृगी के समान तेज़ चल रही थी। विद्युत प्रभ के उपद्रवों से अंजना को सचेत करने के लिये उसका मन अधीर हो उठा था

जैसे कैसे वह महेन्द्रपुर पहुंची। परन्तु नगर में पाँव रखते ही उसका हृदय धड़कने लगा। एकाएक सैकड़ों विचार उसके मस्तिष्क में घूम गए। उसने सोचा कि जिस निर्दोष अंजना को मैंने इतने दुख दिये उसे मैं क्या मुख दिखाऊंगी। उसकी विपत्तियों का प्रधान कारण तो मैं ही हूं, राजकुमार पवन को जब यह पता लगेगा, तो वह क्या कहेंगे? हाँ जब मैं ही अंजना को अपने मुंह से कहूंगी कि तुझे १२ वर्ष तक पति वियोग में तड़पाने वाली मैं ही हूं, मैं ही हूं जिसने देश निर्वासन का षड्यन्त्र रचा और तुझे जन्म भर के लिये विपत्ति के गढ़े में धकेल दिया, उस समय वह क्या कहेगी? वह मेरी ओर किस आँख से देखेगी? वह नेत्र जो पवित्रता और सतीत्व का दर्पण हैं, इस सती के क्रोध से अग्नि के समान

जलने लगेंगे उसको मैं कैसे सहार सकूंगी ? हाय मैं दग्ध हो जाऊंगी। उसके तेज से मेरा पापी चेहरा काला हो जायगा।

इन विचारों से धड़कते हृदय और लड़ खड़ाते पाओं के साथ ललिता नगर में घुसी। परन्तु मनं ने कहा धीरज धर। सती अंजना के नेत्र क्षमा जल से भरे हुए हैं, वे तेरे पापों को क्षमा कर देंगे। उसके मुख मण्डल पर शान्ति बरसती है और वह तेरे चिन्तातुर हृदय को शान्त करेगी। ललिता ! चल और उस सती साध्वी निर्दोष अंजना के पाओं पड़, आने वाले संकट से उसे बचा।

इन्ही बातों को सोचती हुई वह महेन्द्र पुर के राज महल के निकट पहुंची। परन्तु उस समय उस पर मानो वज्र टूट पड़ा जब उसने सुना कि अंजना यहां से निकाल दी गई और वह पशु मुखा बनको चली गई है।

उधर विद्युत के बहुत खोज करने परभी जब ललिता उसको न मिली तो वह बहुत घबराया। प्रातः काल हुआ तो वह राजमहल की उस दासी से मिला जो अभी तक महल में उसकी जासूसी का काम पूरा किया करती थी। परन्तु उस की घबराहट उस समय और भी बढ़ गई जब उसने सुना कि ललिता महेन्द्र पुर को चली गई है।

ललिता का महेन्द्र पुर जाना उसके लिये कोई छोटी

बात न थी। सच पूछो तो ललिता उसके गुप्त भेदों की पिटारी थी। यदि उसका मुंह महेन्द्र पुर जा कर खुल गया तो फिर इरोगा विद्युत का संसार में जीवित रहना असंभव था। राजा महेन्द्र सिंह का क्रोध उसे दग्ध किये विना नहीं रहेगा, यह वह अच्छी तरह जानता था। इस लिए ललिता के चले जाने के समाचारने उसे पागल सा बना दियाथा। वह तुरन्त घोड़े पर सवार हुआ और सीधा महेन्द्रपुर की ओर मुंह रख दिया। परन्तु महेन्द्र पुर पहुंचने पर उसे भी उसी प्रकार निराश होना पड़ा जबकि उसे यह पता लगा कि अंजना पशु मुखा वनमें चली गई है और ऐसे भयानक बन से उसका जीते जी वापस आना असंभव है।

परन्तु अंजना की इस समय उसे विशेष चिन्ता न थी। वह मर जाय व जीती रहे, बन में रह कर वह विद्युत प्रभ का कुछ भी बिगाड़ न कर सकती थी। इस समय तो उसे ललिता का फैसला करना था जो उसके लिये फांसी की रस्सी से कम न थी।

उसने महेन्द्र पुर के चौक गली हाट बाजार एक एक करके सब छान मारे, परन्तु ललिता की सूरत दिखाई न दी। "भेद खुल न जाय" इस भय से उसका कंठ सूखा जा रहा था। प्रातः काल से चलते हुए तीसरा प्रहर होने वाला था, परन्तु अभी तक उसके कंठ से एक घूंट जलका नीचे नहीं उतरा था। जब ललिता को कहीं न पाया, तो निराश हो कर

वह नगर से बाहर निकला। सूर्य्य भगवान के प्रचण्ड ताप और प्यास से उसका चित्त व्याकुल हो रहा था। नगर के बाहर एक सुन्दर पक्का कूंआ था जिसके इर्द गिर्द कुछ छाया दार पेड़ भी लगे थे। उसने इस स्थान को समुचित समझा। घोड़े की जीन खोल दी और नर्म नर्म घास उसके आगे डाल दिन भर की थकान और भूख प्यास के मिटाने के सामान में लग गया। इतने में एक नवयुवक तेज़ी से चलता हुआ उस के सामने आकर ठहर गया और बड़ी सभ्यता के साथ झुक कर बोला——

"पा लागन सर्दार !"

विद्युत प्रभ ने जो अभी कुछ खा पीकर बैठा ही था, आंखे ऊपर उठांई तो एक सुन्दर नवयुवक उसके सामने खड़ा पा लागन कह रहा था। उसके गोरे और गोल चेहरे पर आ कर्ण नयन युगल ऐसी छबि दे रहे थे कि विद्युत-प्रभ की आंखें सहसा उस पर जम गई। उसने मुस्करा कर पूछाः—

विद्युत प्रभ—कहो नौ जवान क्या चाहते हो ?

नवयुवक—श्रीमान् को थका मांदा देख कर सेवा में उपस्थित हुआ हूं, यदि किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो आज्ञा कीजिये, मैं इस धर्म शाला का दारोगा हूं। यहां के महाराज की ओर से मुझे आज्ञा है कि बाहर से आये हुए प्रत्येक मनुष्य का आदर सत्कार करूं।

विद्युत प्रभ—(उसकी ओर देखता हुआ) नौ जवान! मैं तुम्हें देख कर बहुत प्रसन्न हुआ हूं, और तुम्हारी बातों ने तो मुझे मुग्ध ही कर लिया है। महाराज की कृपा से मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं। और अनावश्यक मैं तुम से क्या मागूं।

नवयुवक ने प्रणाम की और वापस मुड़ा। परन्तु अभी कुछ ही कदम आगे गया होगा कि फिर लौट आया और बोलाः-

नवयुवक—हाँ मैं भूल गया! श्रीमान् ने यहाँ से विदा होना होगा और उसके लिये सवारी की आवश्यकता होगी, अत एव मैं फिर आप के चरणों में उपस्थित हुआ हूं कि यहाँ महाराज की ओर से सब प्रबन्ध बना हुआ हैं, इस लिये यदि आवश्यकता हो तो समय पर सवारी हाज़र रखूं।

विद्युत प्रभ नवयुवक की बात चीत और रंग रूप पर कुछ ऐसा लट्टु हो रहा था कि वह चाहता था कि नव युवक कुछ देर उसके पास और ठहरता, परन्तु कोई विशेष बात न होने से उसके मन की मन में ही रह गई थी। नव युवक वापस लौटा तो उसके तृषित नेत्र चकोर की तरह उसे देखने लगे। परन्तु अपने मन के भावों को दबाते हुए उसने उत्तर दियाः—

विद्युत प्रभ—महाराज की इस दया के लिये मैं उन का कृतज्ञ हूं। सवारी के लिये मेरे पास घोड़ा है। (कुछ सोच

कर) परन्तु नौ जवान ! क्या मैं पूछ सकता हूं कि तुम किस देश के रहने वाले हो, क्योंकि तुम्हारे रूप रंग और बात चीत के ढंग से जान पड़ता है कि तुम महेन्द्र पुर के निवासी नहीं हो।

नवयुवक ने तनिक मुस्करा कर उत्तर दियाः– आप ने ठीक जाना, मैं यहां का रहने वाला नहीं हूं। मेरा घर यहां से चालीस कोस दूर पूर्व दिशा में पशु मुखा बन से परली पार तारा गढ़ नामक गांव में है।

पशु मुखा बन का नाम सुना तो विद्युतप्रभ चिहुंक उठा, क्योंकि इसी बनके अन्दर उस की शत्रु अंजना गई थी, और थोड़ी ही देर में वह स्वयं वहां जाने वाला था। पशु मुखा का नाम सुन कर स्वाभाविकतया उसकी इच्छा हुई कि वह उसके सबन्ध में कुछ पूछे। उसने विस्मित सा हो कर पूछाः—

विद्युत—क्या तुम पशु मुखा के संबन्ध में बता सकते हो कि वह किस प्रकार का बन है ?

नवयुवक—क्यों नहीं ! मेरे पिता एक प्रसिद्ध वैद्य थे और उनके साथ मैं अनेक बार जड़ी बूटियों की खोज में उस बन में गया। पशु मुखा बन वनस्पतियों का घर है। परन्तु सिंह व्याघ्र आदिक हिंस्र जंतुओं के भय से कोई कदाचित ही

उधर मुंह करता है। इसी कारण महाराज की ओर से किसी को अंदर जाने की आज्ञा नहीं। हां वैद्यों तथा शिकारियों के लिये आज्ञा है, परन्तु उस के लिये भी महाराज का आज्ञा पत्र लेना पड़ता है। तो क्या आप जाओगे ?

विद्युत—हां मेरी इच्छा तो उधर जाने की है, परन्तु मैं न तो वैद्य ही हूं और न शिकारी, इसी लिये वहां जाने में बहुत कष्ट हो रहा है। परन्तु दोस्त ! तुम बड़े ही चतुर और भले आदमी देख पड़ते हो, यदि इस विषय में मेरी सहायता करो तो मैं तुम्हारा बड़ा ही कृतज्ञ हूंगा।

नवयुवक—परन्तु वहां जाकर आप क्या करेंगे, बिना किसी सरो सामान के वहां जाना इक्के दुक्के का काम नहीं है। वहां जाना और अपने आप को मृत्यु की गुफा में धकेलना एक समान है। अभी थोड़े ही दिन बीते हैं कि महाराज ने अपनी इकलौती लड़की अंजना को उस बन में भेज कर जान बूझ कर मृत्यु के मुंह में डाल दिया है।

विद्युत—(साश्चर्य) हांय, एक अबला पर इतना अत्याचार किया गया है ! निसन्देह यह एक बड़ा ही अनर्थ हुआ है। परन्तु क्या तुम बतला सकते हो कि अंजना जीती है व मर गई ? नौ जवान ! अब मैं अवश्य जाऊंगा और अबला को बचाने के लिये अपनी जान तक भी दे दूंगा। मैं

एक राजपूत का अंश हूं और दुर्बलों तथा अत्याचार पीड़ितों की रक्षा करना राजपूतों का धर्म है।

नवयुवक—धन्य हो सर्दार धन्य हो, क्यों न हो, जब राजा के इस काम पर प्रायः सारे ही लोग क्रुद्ध हैं, तो आप जैसे राजपूत का हृदय दया से पिघल जाना स्वाभाविक ही है। मैं आप के इस कार्य्य में सब प्रकार से सहायता देने को उद्यत हूं, और यदि चाहो तो अभी इसी समय इस नौकरी को छोड़ कर आप के साथ सेवक रूप से चलने को तैयार हूं।

विद्युत का मनोरथ पूरा हुआ, बिल्ली के भागों छींका टूटा, कहां तो यह है कि वह उस के साथ दो बातें करने को तरसता था और कहां यह कि वह उसका साथी बनने को तैय्यार है। उसने नवयुवक की पीठ पर प्यार से थपकी दी और कहा:—

विद्युत—शाबाश ! नवयुवक ! शाबाश ! तुम्हारा साहस सराहनीय है। मुझे तुम्हारे जैसे मनुष्य की बड़ी ही आवश्यकता थी और परमेश्वर की दया से वह पूरी हो गई। अच्छा तो आज दोपहर ढले यहां से चल देना है, क्योंकि अंजना के बचाने में हमें तनिक भी बिलम्ब करना उचित नहीं। कहो, तैय्यार हो ?

नवयुवक—क्यों नहीं, इस से बढ़ कर और कौन सा पुण्य कर्म है जिसके लिये मैं यहां ठहरूंगा। महाराज की नौकरी का कोई मैंने पटा तो लिखाया ही नहीं, जो मुझे यहां रहने पर बाध्य करेगा। लो अब मैं जाता हूं और जिस समय आप घोड़े पर सवार होंगे, यह दास आप के पीछे होगा।
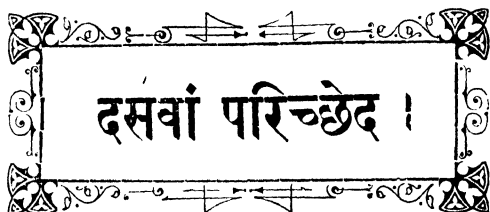
किये का फल ।

संध्या से निवृत्त हो कर जब अंजना ने आंखें खोलीं तो वह स्तम्भित रह गई, क्योंकि दारोगा विद्युतप्रभ और उस का नवयुवक साथी उसके सामने खड़े थे । विद्युतप्रभ का अकस्मात् इस समय सामने आ जाना अंजना के लिये बड़ा ही भय जनक था । उसके मस्तिष्क में विद्युत की एक एक करके सारी बातें घूम गईं । परन्तु फिर भी साहस के साथ अपने आप को खड़ा करके उसने पूछा—

अंजना—तुम्हारे यहां आने का कारण ?

विद्युत—अंजना ! यद्यपि तूने मेरे साथ अत्यन्त अनुचित व्यवहार किया, और मैं चाहूं तो इस समय तेरे किये का उचित फल तुझे दे सकता हूं परन्तु नहीं, इस समय मेरे यहां आने का कारण इसके सिवा और कुछ नहीं कि एक अबला को बचाने में सहायता दूं । अंजना ! तू देवी थी, परन्तु एक राक्षस के वश में पड़ गई ।

अंजना—बंद करो, अपनी जिह्वा को बांध कर रखो। मूर्ख! दास हो कर तेरा यह साहस! सावधान, आर्य्य पुत्र के विषय में ऐसे शब्दों को सुनने के लिये मैं तैय्यार नहीं हूं।

विद्युत—(हंसते हुए) न सही, मुझे इसकी कोई आवश्यकता भी नहीं, परन्तु मैं इतना कहे बिना न रहूंगा कि पवन को अपनाकर तुमने बहुत दुख उठाए।

अंजना—जो हो चुका, हो चुका। मुझे सुख मिला व दुख, इस पर पश्चाताप करना व्यर्थ है, पूर्व जन्मों के कर्म अपना फल दे कर ही रहते हैं, इस में किसी का दोष नहीं है।

विद्युत—परन्तु अब यह दास तुम्हारी आयु भर सेवा करने को तैय्यार है, कहो क्या इच्छा है?

अंजना—तुम्हारे इन शब्दों को मैं नहीं समझ सकी, मेरे पास इस समय कौन सी सेवा है जिसके लिये तुम यहां आए हो?

विद्युत—नहीं, मुझे किसी विशेष सेवा की इच्छा नहीं, सिवा इसके कि मैं तुम्हें इस दुख से बाहर निकाल दूं और तुम्हें अपने गृह का भूषण बना कर संसार को यह दिखा दूं कि जिसे कांच का टुकड़ा समझ कर फैंक दिया गया था, वस्तुतः वह एक उज्ज्वल रत्न था।

अंजना के नेत्र क्रोध से लाल हो गए, उसकी देह

गुस्से से थर थराने लगी। भृकुटी को तानते हुए उस राज पुत्री ने कहाः--

अंजना—मूर्ख ! वाचाल !! तेरे शब्द ऐसे हैं कि तेरी जिह्वा काट ली जाय। धिक्कार है तेरे साहस पर। सिंह की बलि को देख कर गीदड़ की लार टपकने लगी, यह कैसा अचम्भा है। यदि अकेली देख कर। तुझे ऐसा साहस हुआ है तो यह तेरी भूल है। कमर से कटार निकाल कर) मैं अभी इस कटार से अपने आप की हत्या कर डालूंगी।

विद्युत---.अंजना के हाथ से कटार छीनते हुए) स्त्रियों के हाथ में कटार ! अंजना तेरी भोली भाली सूरत पर मुझे दया आती है, नहीं तो विद्युत का क्रोध तुझे क्या, बड़े बड़े जियालों को भस्म कर देने वाला है। इस हठ और मूर्खता को छोड़, मेरा घर घाट और धन सम्पत्ति सब कुछ तेरी एक 'हां' पर निछावर है।

अंजना--हट दूर हो, बन में अकेली फिरती हुई, भाग्य की मारी एक अस्सहाय स्त्री पर हाथ उठाना और फिर वीरता का शब्द मुंह पर लाना! निर्लज्ज तुझे लज्जा नहीं आती?

विद्युत—एक विपत की मारी स्त्री को बचाना और उसे अपने गृह में आश्रय देना, यदि इसे निर्लज्जता का का नाम दिया जाता है, तो उपकार और कृतज्ञता का नाम

संसार से उठ गया है अंजना ! तेरे इन अपमान भरे शब्दों ने मेरे हृदय को चीर डाला है सच कहता हूं कि सहनशीलता की हद हो चुकी, इस से आगे यदि एक भी शब्द तेरे मुख से निकला, तो याद रख यह कटार और तेरा सिर होगा। मूर्ख स्त्री ! अपने हठ को छोड़, देख लाखों रुपयों की सम्पत्ति रखने वाला तेरी एक जरा सी "हां" पर तेरे पाओं पर गिरने वाला है।

अंजना –आग लगे तेरे धन को, उस आर्य्य पुत्र पर तेरे जैसे सैंकड़ों मनुष्यों को निछावर कर दूं। जिस थाली में खाना उसी में छेद करना; यह तेरे जैसे दुष्टों का काम है। पापी पिशाच !! यदि अपनी भलाई चाहता है तो यहां से चला जा जा तुझे क्षमा करती हूं।

विद्युत तो फिर नहीं मानेगी ?

अंजना--नहीं नहीं सौ वार कहती हूं नहीं।

विद्युत –बुरा होगा।

अंजना—सब कुछ सहने को तैय्यार हूं।

विद्युत-ले फिर सम्भल जा 'विद्युत के अपमान का फल मिलने वाला है' इन शब्दों के साथ ही उसने अंजना को ज़ोर से धक्का दिया और वह लड़ खड़ाती हुई पृथ्वी पर लोटने लगी। विचारी बसंत माला चीख पुकार

करती हुई विद्युत पर झपटी। परन्तु एक बलवान और हृष्ट पुष्ट पुरुष को वह कहां तक रोक सकती थी, एक ही धक्के से वह भी भूमि पर गिर पड़ी। और वह राक्षस अंजना की छाती पर चढ़ कर अपने दोनों हाथों से उसका गला दबाने लगा।

परन्तु मनुष्य कुछ और सोचता है और परमात्मा कुछ और। गजपाल सिंह के नवयुवक साथी ने देखा तो कांप उठा। उसकी चमकती हुई कटार एकाएक म्यान से बाहर निकली और आंख झपकते उस निर्दयी के कलेजे को चीरती हुई पार कर गई। दरोगा एक जोर से चीख मार कर भूमि पर तड़पने लगा। मूर्छित हुई हुई अंजना की छाती से घायल राक्षस को घसीट कर परे फैंक दिया गया। इस समय वह प्रतिकार की अग्नि को अपनी आंखों में लिये दम तोड़ रहा था। उसने नवयुवक की ओर लक्ष्य करके कहा:-

विद्युत शोक! नवयुवक!! तूने मुझ निर्दोष को मार दिया। साथी हो कर विश्वास घात किया (करवट बदलते हुए) हाय मैं मरा।

नवयुवक—साथी! किसका साथी!! संसार में कोई कब किसी का साथी है। आयु भर पवन कुमार का खाकर उनकी स्त्री पर तूने कुदृष्टि रखी, पंद्रह वर्ष से बराबर साथ

देने वाली ललिता के उपकारों को भूल कर, उसके प्रेम और और उसकी श्रद्धा को लात मार तुम उसकी हत्या के लिये निकले; यह उस कृतघ्नता का फल है। इन शब्दों के साथ ही नवयुवक ने विद्युत के घोड़े की पीठ पर पांओं रखा और हवा से बातें करने लगा।

ग्यारहवां परिच्छेद

तपस्वी का आश्रम।

अंजना और बसन्त माला होश में आई तो उन्हों ने विद्युत प्रभ को खून में लत पत मरा हुआ पाया। इस भयंकर हत्या काण्ड ने अंजना के हृदय को कंपा दिया। जिस राक्षस ने अभी आधी घड़ी भी न बीती थी, उसके प्राण लेने का यत्न किया था, उसकी भी मृत्यु से उसके मनकोअत्यन्त दुख हुआ। उसका हृदय दया से भर गया। उसने अपनी ठोढ़ी पर उंगली रखते हुए कहाः—

अंजना - हाय, बिचारे की यूं ही जान गई।

बसन्तमाला—अंजना ! बहन !! सच मुच तुम बड़ी ही भोली लड़की हो। परमेश्वर का धन्यवाद करो कि आज तुम्हारे प्राण बच गए, नहीं तो इस राक्षस ने तो अनर्थ ही करडाला था। इसके लिये शोक करना व्यर्थ ही नहीं वरं अनुचित है।

अंजना—बसन्त! सच मुच यह बड़े ही शोक का स्थान है। निस्सन्देह इसकी हत्या का कारण मैं ही हूं। मैं मर

जाती तो मुझे तनिक भी दुख न था। भला तू ही बता, इस समय मेरा जीवन मृत्यु से बढ़ कर दुख दायी नहीं हो रहा?

इससे आगे उसका कंठ भर आया और वह रोने लगी।

वसन्त माला—चलो छोड़ो, अब रोने और शोक करने से मरा हुआ मनुष्य वापस नहीं आयगा। परमेश्वर का नियम अटल है बहन, जो जैसा करता है वैसा भुगत लेता है. इस में किसी के कहने सुनने की कोई बात नहीं है। उसने अपने किये का फल पाया, तुम अपनी प्रारब्ध को भोग रही हो।

रो धो कर अंजना का मन कुछ हलका हुआ तो वे दोनों वहां से उठीं। भूख से उस समय उनके कलेजे मुंह को आ रहे थे। इस लिये रोज की तरह आज भी उन्हों ने जंगली बेरों से पेट की ज्वाला को शान्त किया। पास ही बर्साती जल का एक नाला था जिस में जल पी कर उन्हों ने परमात्मा का धन्यवाद किया और वहां से आगे चलीं। कोस डेढ़ कोस चलीं होंगी कि एक जटा धारी सफेद दाढ़ी वाले महात्मा उन को सामने से आते दिखाई दिये। इस बीहड़ बन में जहां एक महीने से सिवा दारोगा के उन्हें दूसरे किसी मनुष्य के दर्शन नहीं हुए थे, एकाएक इस वृद्ध मूर्ति को देख कर वे आश्चर्य्या चकित रह गईं। महात्मा ने भी ज्यों ही इन दोनों को देखा तो वे लंबे लंबे डग मारते हुए इन के सन्मुख

आ खड़े हुए। महात्मा यद्यपि देखने में अस्सी वर्ष से कम न होंगे, परन्तु इनका तेजस्वी मुख मण्डल और सीधा खड़ा हुआ शरीर कह रहा था कि आप नैष्ठिक ब्रह्मचारी और पूरे तपस्वी हैं। उनके हंसते होंठ प्रत्येक जीव जन्तु को अभय दान दे रहे थे। अंजना ने उनके चरणों पर झुक कर प्रणाम किया। महात्मा ने प्यार से उसके मस्तक को ऊंचा करते हुए पूछाः—

महात्मा—पुत्रि! तुम कौन हो, और किस कारण इस भयानक अरण्य स्थली में अकेली घूम रही हो?

अंजना के कानों ने तेरह वर्ष के पश्चात् आज पहली बार इस प्रकार की प्रेम से सनी हुई वाणी सुनी, उस का हृदय भर्रा उठा और सजल नेत्रों के साथ उस ने उत्तर दिया—

अंजना—भगवन्! मैं कौन हूं, इसका मैं क्या उत्तर दूं। जब कभी मैं थी, सब कुछ थी परन्तु अब इसके सिवा मैं क्या कहूं कि एक हतभाग्या, संसार के निर्दयी हाथों से सतायी हुई असहाय स्त्री हूं।

महात्मा—तुम्हारा कोई ठिकाना?

अंजना—महाराज! जहां बैठ गई वहीं ठिकाना।

महात्मा—इस बन में कब से आई हो?

अंजना—आज पूरा एक मास हो गया।

महात्मा—तो कहां जाओगी?

अंजना—जहां मेरी प्रारब्ध मुझे ले जायगी।

महात्मा—पुत्रि! तेरी बातों से मुझे विश्वास हो गया है कि संसार के निष्ठुर हाथों ने तुझे बहुत दुख दिये हैं। परंतु फिर भी मैं यही उपदेश देता हूं कि तुम्हें अपने गृह में लौट जाना उचित है। इस गह्वर बन में जहां तहां सिंह व्याघ्र आदि बिकाल जन्तुओं का निवास है, अनेक उपद्रवी राक्षस मनुष्य घूमते फिरते हैं, खान पान को कुछ नहीं मिलता। ऐसी अवस्था में लड़कियों का अकेले यहां घूमना अनर्थ का हेतु है।

अंजना—भगवन्! यदि कोई गृहद्वार होता तो आपकी आज्ञा सिर मस्तक पर चढ़ाती। परन्तु मेरा तो उस दीनबन्धु परमात्मा के सिवा दूसरा कोई नहीं है। सास ससुर ने मुझ निर्दोष पर लाञ्छन लगा कर देश निकाला दे दिया। माता पिता के पास गई तो उन्हों ने दूर से ही कानों पर हाथ धरे, और मेरे पति जो मेरी सहायता करने वाले और निर्दोषता के जानने वाले हैं, युद्ध पर गए हुए हैं। ऐसी अवस्था में मैं जाऊं तो कहां और करूं तो क्या? अब तो केवल एक ही इच्छा बाकी है और वह यह कि इसी बन में अपने दुखमय जीवन का अंत कर दूं।

अंजना की आंखों से जल की धारा बह निकली और हिचकियां ले ले कर रोने लगी।

महात्मा ने इस दुख भरी कहानी को सुना तो उनके नेत्र भी भर आए। ऊन्हों ने अंजना को धीरज बंधाते हुए कहा।

महात्मा—पुत्रि ! मत रो, परमेश्वर पर भरोसा रख। सदा दिन एक से नहीं रहते। चल मेरे आश्रम में अपने काले दिनों को सुख से व्यतीत कर। आज मे तू मेरी पुत्री हुई और मैं जहां तक बन पड़ेगा तेरे दुर्दिनों को दूर करने का यत्न करूंगा। मूर्ख संसार सत्य और झूठ की पहचान नहीं रखता, यहां पापी पुण्यात्मा, धूर्त सदाचारी, दुर्जन सज्जन, और झूठे सच्चे समझे जाते हैं, परन्तु अन्त में सत्य सत्य ही है और झूठ झूठ। मुझे विश्वास है कि एक दिन आएगा, जब तू उन्हीं लोगों से, जिन्हों ने तेरे पवित्र जीवन पर कलंक लगाकर तुझे अपमान के साथ बाहर निकाल दिया है, चरण पुजवायेगी। वे पश्चाताप की आंसुओं से तेरे चरण धोकर अपने पाप का प्रायश्चित करेंगे।

महात्मा के इन शब्दों ने अंजना के घाव पीड़ित हृदय पर मरहम का काम किया और वह बसन्तमाला के साथ महात्मा के पीछे पीछे हो ली।

बारहवां परिच्छेद।

युद्ध से लौटे

रावणऔर वरुण का संग्राम समाप्त हो गया। दो महा प्रतापी राजाओं का द्वेषानल लाखों निर्दोष प्राणियों के रक्त से ठंडा हो गया। बेचारे अबोध ग़रीबों को देश और जाति के नाम पर उभार कर दो राजाओं ने अपना स्वार्थ सिद्ध कर लिया। राजनीति के चतुर मंत्रियों ने लाखों मनुष्यों के लहू से होली खेल ली। रावण की जीत और वरुण की हार हुई।

खरदूषण को छुड़ा लिया गया। और वरुण के पात्रों को बेड़ियाँ लगा कर संसार को यह पाठ पढ़ाया गया, कि बलवान के सामने ललकार मारना मृत्यु को ललकारना है इस भीषण युद्ध में राजकुमार पवन ने वह हाथ दिखाए कि भारत की तलवार सारे संसार में नाम पा गई। वास्तव में इस विजय का सेहरा ही पवन के सिर पर रहा। जिस वरुण के नाम से रावण थर थर कांपता था, जिसने अनेक वार उस

अञ्जना—हनुमान्
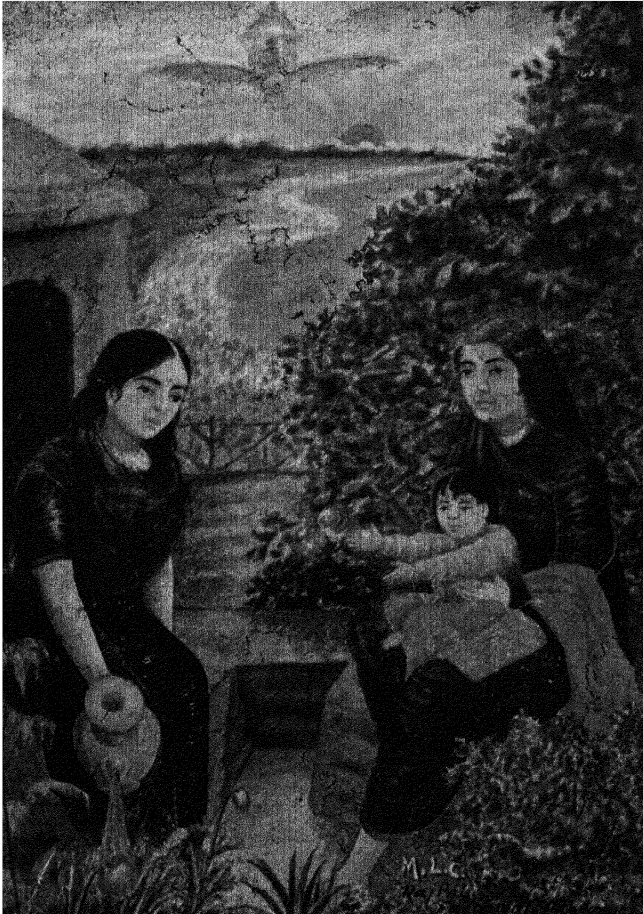
अहह! वह देखो नन्हा सा बालक वसंतमाला की गोद में से किस प्रकार अपनी माता अञ्जना की ओर लपक रहा है। [पृष्ठ नं० ८७]

भांज दी थी, और उसके दोनों भाई खर और दूषण को बांध लिया था; उस वरुण को पवन अपने हाथों से रणभूमि में घसीटता हुआ रावण के सन्मुख लाया था।

युद्ध की समाप्ति पर खुशी के बाजे बजे। विजय पताकाएं आकाश में उड़ाई गईं। राष्ट्रीय जय घोष किये गये। वीर सिपाही और सेना के अफ़सरों को बड़े बड़े स्वर्ण पदक और पुरस्कार बांटे गए। और इस वैजयन्ती उत्सव के पश्चात सेनाएं रणभूमि से लौटीं।

संसार के भाव भी कैसे विचित्र होते हैं। कैसा भी बलवान कैसा भी प्रतापी और गुणवान मनुष्य क्यों न हो, पराजय उसके मुख को पीले रंग से रंग देती है। भाई बन्धु मित्र उसके पूर्व गुणों को भूलकर उसकी निन्दा करने लगते हैं। बरसों की बनी हुई पराजय के दर्शन होते ही बिगड़ जाती है। अपने बेगाने हो जाते हैं और कोई उसका मुख तक देखना पसंद नहीं करता। इसके विपरीत विजय लक्ष्मी के आते ही मनुष्य का मुखमण्डल सूर्य्य की न्याई चमकने लगता है हृदय आनन्द से उछलने लगता है क्या अपने और क्या बेगाने विजेता के रास्ते में अपनी आंखें बिछा देते है।

पवन की सेना इस समय विजय के मद में इतराई हुई रत्नपुर को वापस आ रही है। रास्ते में प्रत्येक बड़े नगर में

उनकी अभ्यर्थना जिस समारोह से हुई वह देखने के साथ ही संबंध रखती है। सड़क के दोनों ओर खड़े हुए प्रत्येक ग्राम और नगर की जनता के जयघोष ने वरुण की राजधानी से लेकर रत्नपुर के दरवाजों तक को गुंजा दिया था। जहाँ जहाँ से कुमार गुज़रे फूलों की वर्षा से पृथ्वी पुष्पमयी हो रही थी। रत्नपुर नगर के अन्दर पांव रक्खा तो सवारी का दृश्य और भी सुन्दर होगया। सब से आगे बाजे की सुरीली धुन दर्शकों के सोये हुए जोश को उभार रही थी उसके पीछे प्यादा फ़ौज़ चार चार की पंक्तियों में राष्ट्रीय जयकारों से गुजर रही थी।। तत्पश्चात् बांके राजपूत सवार अपने स्याह घोड़ों को नचाते जा रहे थे और इन सब के पीछे सौवर्ण छत्र के नीचे ऐरावत गज पर सवार स्वयं पवनकुमार विराजमान थे। प्रत्येक आँख उनके सूर्य्य समान तेजस्वी मुख पर पड़ रही थी।

पवनकुमार राजमहल में पहुंचे। द्वार पर राजमाता सैकड़ों सखी सहेलियों तथा दास दासियों सहित आरती उतारने के लिये मंगलथाल हाथों में लिये खड़ी थीं। हाथी से उतर कर कुमार द्वार पर गये तो माता के चरणों पर मस्तक निवाया। माता ने मस्तक चूमा, आरती उतारी, और मोहरों के थाल न्योछावर किये।

परन्तु पवनकुमार का जिनके मुखमंडल पर इस समय तक आनन्द छलक रहा था, चेहरा लाल हो रहा था, न जाने ड्योढ़ी पांव रखते ही क्यों एकाएक सफेदी पकड़ रहा था। उनकी गम्भीर और स्थिर दृष्टि उस समय किसी वस्तु को टटोलती हुई चंचल हो रही थी, जिसके न देखने से वे व्याकुल हो रहे थे, अस्तु, उसी दृष्टि से वे आँगन में पहुंचे। परंतु उनकी व्याकुलता और भी बढ़ गई जब उन्हों ने उस वस्तु को वहां भी न पाया जिसके देखने के लिये उनके नेत्र अधीर हो रहे थे।

"राधा ! प्रियतमा कहां है, क्या उसको मेरे आगमन की सूचना नहीं मिली ?" कुमार ने व्यग्र नेत्रों के साथ राधा को, जो उनकी पुरानी दासी थी, एकांत में पूछा।

राधा ने भरे हुए नेत्रों से मुंह खोला:—

राधा—महाराज ! वह तो देर हुई यहां से·········

कुमार—हां हां कहो, रुकती क्यों हो, यहां से क्या हुई ?

राधा·········यहां से चली गई।

कुमार—कहां चली गई और किस कारण चली गई ?

राधा—यह सब कुछ आप माता जी के मुख से सुन लेंगे। हां मैं इतना कह सकती हूं कि उस बेचारी ने यहाँ का कुछ न देखा।

राधा की इन बातों से पवन के तोते उड़ गए। मस्तक

शून्य हो गया और बिजली के समान सैकड़ों बिचारों ने उसके हृदय पर आक्रमण कर दिया।

वह शिर नीचा किये सीधे माता जी के पास गये और बिना कुछ कहे सुने चिन्तातुर से होकर बैठ गए।

मनुष्य का चेहरा उसके अंतर्पट का प्रतिबिम्ब मात्र है। माता ने पुत्र को इस अवस्था में देखा तो समझ गई। उसने हंसते हुए होठों से कुमार को लक्ष्य कियाः—

माता—क्यों किस चिन्ता में बैठे हो?

कुमार—कुछ नहीं, (सिर उठा कर) अंजना का क्या हुआ?

माता—(हंस कर) कुछ नहीं, उसे क्या होना था। वह तो हमारे वंश को कलंकित करने आई थी, कर गई। जो कुछ हुआ, हमारा हुआ। उसका क्या होना है वह यहाँ न रही, कहीं और जगह मट्टी उड़ा लेगी। बेटा! मैंने तेरे और तेरे पिता के नाम को बचा लिया और उसे यहाँ से निकाल बाहर किया।

माता के इन शब्दों ने पवन के सिर पर पहाड़ तोड़ दिया। अंजना के विषय में, हाँ उसके विषय में जिसने १२ वर्ष तक पति के वियोग की ज्वाला सही थी, आज इस प्रकार के शब्द सुन कर उसका हृदय वज्राहत हो गया। उसने एक गर्म साँस लेकर मुंह खोलाः—

पवन—माता ! अंजना ने कौनसा ऐसा पाप किया जिसके फल में उसे घोर दण्ड दिया गया, यह मैं सुनना चाहता हूं।

माता—अंजना का अपराध नगर का एक एक स्त्री पुरुष जान चुका है। परन्तु यदि तुम मुझसे ही सुनना चाहते तो लो मैं सुना देती हूं। उसने तुम्हारी अनुपस्थिति में अपना मुंह काला कर लिया और अपनी सफेद चादर को कलंक लगा लिया। मुझे मेरी दासियों ने सूचना दी कि अंजना गर्भवती है। बेटा ! बारह वर्ष पर्यंत तुमने उसका मुख नहीं देखा। और उसी अंतर में तुम युद्ध पर चले गए। इन सब बातों को जानते हुए भी मैंने दासियों के कथन पर विश्वास न किया और अपनी आँखों देखने का विचार करके उसके महल में गई। परन्तु वहाँ जाने पर देखा कि दासियों ने सत्य कहा था और उसका सर्वनाश हो चुका था। जब मैंने उसे पूछा तो उसने मेरी आँखों में धूल झोंकने का प्रयत्न किया। और एक जाली अंगूठी जिसे वह तुम्हारी बताती थी, मुझे दिखाकर भरमाने लगी। हाय ! हाय !! आज कल की लड़कियाँ बड़ी चतुर होती हैं, कहती थी, कुमार युद्ध पर जाते तीन दिन यहाँ ठहरे और यह अपनी अंगुली का चिह्न दे गए हैं। भला इन बातों को मैं कब मानने वाली थी। बेटा ! उसने तो हमारे कुल को कलंकित कर दिया। जो मैं तो

आया कि इसे यहीं मरवा डालूं पर स्त्री जानकर देश निकाला दे दिया ; अब वह......

माता के अन्तिम शब्दों ने पवन के हृदय को दग्ध कर दिया। वे इससे आगे कुछ न सुन सके। उनके नेत्र क्रोध से लाल हो गए। झुंझला कर बोलेः—

पवन—माता ! तूने अनर्थ कर डाला। उस निर्दोष की हत्या करके सारे कुल को क्या सारे देश को कलंकित कर दिया। हाय तूने अंधेर कर मारा जो उस पर विश्वास न किया निस्सन्देह वह सत्य कहती थी। मैं तीन दिन उसके महल में रहा, और विदाई के समय अपने हाथ की अंगूठी उसे देता गया जिससे मेरी अनुपस्थिति में किसी प्रकार का कलंक उसके माथे न लगाया जाय। हाय माता ! तूने वही किया जिससे वह डरती थी। उसने मुझे बहुतेरा कहा कि जाने से पहले मैं तुम्हें मिल आऊं, परन्तु मेरी प्रारब्ध ने मुझे यह दिन दिखाना था, इस समय उस बेचारी पर न जाने क्या गुज़रती होगी। कदाचित् जीती है वा मर ही गई है। निःसन्देह संसार के लोग हमारे वंश के अत्याचारों की कहानियाँ करेंगे, हमारे नाम पर थूकेंगे। माता ! तूने अञ्जना को निकाल कर अपनी निर्दयता की डौंडी सारे जगत में पिटवा दी। अच्छा अब जो होना था होचुको, अब मैं जाता हूं परन्तु जाने से पहले यह शपथ खाता हूं कि यदि वह मुझे न मिली तो उसी सती साध्वी की खोज में अपने प्राण खो दूंगा।

क्रोध और आवेश में आया हुआ कुमार उपरोक्त शब्दों से बाहर निकल गया।

तेरहवां परिच्छेद ।

उषाकाल की लाली ने आकाश में डोलते हुए अभ्र खंडों के मुंह को गुलाबी रंग दिया। वायुमण्डल में उड़ते हुए सुनहरी किनारों वाले बादल ऐसे प्रतीत होते हैं मानों देवतागण विमानों पर बैठे हुए भूलोक की शोभा देख रहे हैं। तुंगभद्रा के तट पर तपस्वी महात्मा का आश्रम अग्निहोत्र का ईषत् नील सुगन्धित धूंआ उगल रहा है। आश्रम के चारों ओर फुलवाड़ी अपने चटकते हुए फूलों से मुस्करा रही है। ताम्र कलश हाथ में लिये अञ्जना पौधों को जल सिंचन कर रही हैं। गेंदा गुलाब केवड़ा मोतिया चम्पा सेवती और मौलसिरी की क्यारियों में खड़ी हुई अञ्जना और बसन्तमाला परमात्मा की लीला को देख देख कर प्रसन्न होती हैं। आश्रम के मृग प्रातःकाल के शीतल पवन में कुलेलें कर रहे हैं।

अहह ! वह देखो नन्हा सा बालक वसंतमाला की गोद में से किस प्रकार अपनी माता अञ्जना की ओर लपक रहा है।

अञ्जना ने उसे लपकते देखा तो गाल पर एक हल्की सी चपत लगाकर अपनी गोद में ले लिया और कहाः—

अञ्जना—बंदर है बंदर, देख वसन्त कैसे बंदर की तरह लपका है।

बसंत—पिता तो बड़े बड़े महलों में पला है। पर पुत्र बन में उत्पन्न हुआ है, बंदर न बनेगा तो और क्या बनेगा। यह कहकर उसने बालक का मुख चूम लिया।

बालक ने ज़ोर से किलकारी मारी और खिलखिला कर हंस दिया। बच्चा भी परमेश्वर ने कैसी चीज़ बनाई है। इसका एक एक कटाक्ष माता पिता के हृदय को आनन्द से भरपूर कर देता है। इसकी मुस्करान पर तीनों लोक की सम्पत्ति निछावर है। बच्चा अंधेरे घर का उजाला है। सच पूछो तो बच्चों ही से संसार हसता खेलता दिखाई देता है। दुख और चिन्ता का मारा मनुष्य बच्चों में आकर दो घड़ी जी परचा लेता है। अञ्जना को वन में रहते हुए आज डेढ़ वर्ष के लगभग हो चुका है, परन्तु इस दीर्घकाल के अंदर आज पहला वार उसके होंठों पर हंसी की रेखा झलकती दिखाई दी है। इस समय उसके जीवन की आशा, उसके नयनों का तारा, उसके विपत्ति काल का सहारा उसके प्राणपति का एक मात्र चिह्न यही एक बच्चा है। अञ्जना ने बालक को गोद में लिया और उसे चुटकियां मार मार कर बहलाने लगी। इधर वसंतमाला कलश को अपने हाथ में लेकर पोधों को सींचने में मग्न हो गई।

इस प्रकार यह दोनों सुख दुख की साथिनें आश्रम की सेवा में तन्मय हो रही थीं कि एकाएक आकाश में एक गम्भीर नाद बजने लगा। इस अकस्मात् गगन गर्जना से दोनों की आँखे ऊपर को उठ गईं। देखते २ यह शब्द और भी व्यापक हो उठा। और थोड़े ही देर में एक बड़ा विमान बादलों से निकल कर खुले आकाश में उड़ता दिखाई देने लगा। विमान को देखा तो अञ्जना के अनायास होंठ खुल गए:—

अञ्जना—विमान, विमान, वसंत! वह देख कैसा सुन्दर विमान आकाश में तैरता जा रहा है।

वसंतमाला—हां हां विमान, और यह इसी बन में उतरेगा।

अञ्जना—अवश्य, वह देखो उसने कबूतर की न्याईं पल्टी खाकर अगले सिरे को पृथ्वी की ओर झुका दिया।

बच्चे ने देखा तो उसने अपनी नही भुजाएं फैला दी। 'विमान पकड़ेगा विमान" कह कर अञ्जना ने बालक को अपनी भुजाओं के बल ऊंचा कर दिया। बालक हंसा तो वसन्तमाला बोली 'हाँ हाँ बंदर तो है, क्यों न पकड़ेगा। अभी फलांग मार कर चढ़ जायगा। इस प्रकार बसंतमाला और अंजना के देखते देखते विमान आश्रम से दूर भूमि पर उतर गया, जिस में से निकलते हुए दो मनुष्य परस्पर इस तरह बातें कर रहे थे—

'स्वामिन्! तुगभद्रा यहां से दूर है और रास्ता भी बहुत टेढ़ा मेढ़ा और कंटीला है। प्यास से जिह्वा खिंची जा रही है और कंठ सूख गया है। इस लिये (आश्रम की ओर उंगली करके) इस आश्रम को छोड़कर वहां जाने में विशेषता नहीं. और आप ने युद्ध में जाते समय कहा भी था कि इस बन में एक तपस्वी का अति सुन्दर आश्रम है। चलो तपस्वी के दर्शन और आश्रम के शीतल जल से अपने आत्मा और शरीर की तृषा शान्त करें।

विमान से नीचे उतर कर महारानी रवि सुन्दरी ने अपने प्राणपति महाराज प्रतिसूर्य्य को उपरोक्त शब्दों से आश्रम में चलने के लिए कहा।

प्रतिसूर्य्य – हां हां प्रिये! तुमने समय पर स्मरण कराया चलो दो घड़ी इस आश्रम में विश्राम करो और देखो कि बड़े बड़े प्रासादों में रहने वाले, सैकड़ों दास दासियों से घिरे रहने वाले सुख सम्पति भरपूर राजा महाराजा और सेठ साहूकारों से यह तपस्वी बनबासी लोग कितने सुखी और कितनी शान्ति से अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

इस प्रकार बात चीत में यह दोनों स्त्री पुरुष आश्रम की ओर बढ़ रहे थे। कि दायें हाथ जंगली हिरनों का एक यूथ झपाटे से निकल गया, जिसे देखकर महारानी तनिक सी

महारानी—और इन चम्पक पुष्पों को भी देखो जो कुम्हला कर भूमि पर गिर रहे हैं।

प्रतिसूर्य—निस्सन्देह यह फूल नवयुवकों को उपदेश दे रहे हैं, कि शरद ऋतु के मेघों के समान दो दिन की युवावस्था पर अभिमान न करना। कभी हमें भी डालियां चूमा करती थीं, वायु मस्त हिलोरे दिया करता था. हर एक की आंख हम पर पड़ती थी और हाथ गले लगाने के लिये ऊपर उठते थे, पर आज हम है कि भूमि पर पड़े मसले जा रहे हैं और कोई आंख उठाकर भी नहीं देखता।

इन्हीं बातों में वे आश्रम के अन्दर प्रविष्ट हुए। तपस्वी महात्मा उससमयअपने नित्य कर्म से निवृत हो चुके थे, महाराज ने उन्हें देखा तो झुककर प्रणाम किया। "नमस्कार करता हूं भगवन्!

तपस्वी—चिरंजीव रहो राजन्! प्रसन्न तो हो, कई वर्षों के पश्चात् आज दर्शन हुए आओ बैठो यह आसन है।

महाराज—राज कार्य्य में लिप्त हुए हम लोगों को आप के दर्शनों का सौभाग्य कहां। रावण के महायुद्ध से निवृत होकर संयोगवश इधर आ निकला हूं।

तपस्वी—सच है लाखों मनुष्यों के पालन पोषणक

भार जिसके सिर पर हो उसे अवकाश कहां। कहो प्रजा की सुख वृद्धि का क्या हाल है?

महाराज--भगवन्! आप की दया से सब प्रजा सुखी है अन्नधन और गोधन की मेरे राज्य में कोई कमी नहीं है। देश भर में कोई चोर कोई डाकू नहीं, बाल वृद्ध और स्त्रियां सब निर्भयता से विचरते हैं। घर घर में उभय काल हवन होते हैं। कोई अकाल मृत्यु नहीं होती माता पिता के बैठे संतान नहीं मरती। स्त्रियां प्रतिव्रता हैं और सब प्रकार से कुशल मंगल है।

धन्य हो राजन् धन्य हो। परमेश्वर तुम्हारी सुबुद्धि बनाये रखे और तुम्हारा राज्य अटल रहे। इस प्रकार कुशल मंगल पूछने के पश्चात् तपस्वी ने अञ्जना को पुकारा "बेटी अञ्जना! तनिक इधर आना"

अञ्जना अभी तक पौधों को सींच रही थी। महात्मा की आवाज को सुना तो वसन्तमाला के साथ कुटिया में आई।

महारानी रविसुन्दरी ने उसे देखा तो उसका हृदय धड़कने लगा। उसके मस्तिष्क में एक एक करके कई विचार उठे। उसकी आँखें अञ्जना को पहचान गई थीं, बुद्धि ने बार २ साक्षि दी कि यह अञ्जना ही है, परन्तु हृदय उसे स्वीकार नहीं करना चाहता था। मेरी अञ्जना इस बन में इस प्रकार दुख

उठा रही है यह बात उसकी कल्पना में भी नहीं आसकती थी कहाँ रत्नपुर का राजमहल और कहाँ यह निर्जन बन का आश्रम जिसकी उंगली की सैनि से सारे संसार का ऐश्वर्य उसके चरणों में रखा जा सकता है वह इस बनबासी की कुटिया में आकर क्यों रहेगी। नहीं यह अञ्जना नहीं, परन्तु वही रूप वही रंग वही चाल, परमेश्वर! क्या मैं स्वप्न देख रही हूं। परमेश्वर करे मेरी आंखें धोखा खाती हों, और इस धोखे की उपलब्धि में वह एक टक अञ्जना की ओर देख रही थी कि अञ्जना, के मुख से एक चीख निकल गई, और वह 'मामी मामी' कहती हुई महारानी की गोद में लिपट गई।

रविसुन्दरी अपनी भाञ्जी को इस दशा में देखकर अधीर हो गई। उसका हृदय स्नेह से उमड़ आया। नेत्रों से अश्रु टपकने लगे। तपस्वी महात्मा इस दृश्य को देखकर रह न सके। संसार से विरक्त होते हुए भी उनका हृदय साँसारिक प्रेम से जागृत हो उठा। महाराज प्रति सूर्य्य स्वयं अचम्भे में थे। अपनी भाञ्जी को, हाँ उस भाञ्जी को जो एक पराक्रमी और प्रतापी के हाथ सौंपी गई थी, इस असहाय अवस्था में देख कर उनका मन दुख और आश्चर्य्य के अगाध जल में गोते खाने लगा।

रविसुन्दरी ने अञ्जना का प्यार से सिर ऊंचा उठाया और पूछाः—

रविसुन्दरी—बेटी ! यह मैं आज क्या देख रही हूं ?

अञ्जना—(रोकर) मामी ! अञ्जना के अज्ञात कर्मों का फल, किसी का क्या दोष, तेरी अञ्जना की प्रारब्ध ने उसे देश निर्वासित किया। माता पिता भाई बहन सास ससुर और वे जिसके हाथ में तूने अञ्जना का हाथ दिया, एक एक करके उससे अलग कर दिये गये। और अब वह इस कुटिया में अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रही है। इन बचनों से अञ्जना ने आदि से अंत तक अपनी दुख की कथा कह सुनाई।

रविसुन्दरी ने सुना तो उसके रोंगटे खड़े हो गए। उस का हृदय ऐसा हो गया मानों फटना चाहता है। अञ्जना के मामू महाराज प्रतिसूर्य्य के होंठ क्रोध से फड़क रहे थे, और उसका एक एक शब्द उनके हृदय को टुकड़े टुकड़े कर रहा था। मन ने कहा कि अभी जाकर रत्नपुर की अंधेर नगरी का विध्वंस कर दें और इस घोर अत्याचार का इस अमानुषिक जुल्म का फल चखा दे परन्तु इस क्रोधानल को अंदर ही अंदर दबा कर उन्हों ने अञ्जना की ओर लक्ष्य किया:—

प्रतिसूर्य्य—बेटी जो कुछ हो चुका है उस पर शोक करना वृथा है। तेरी हृदय वेधक कथा ने मेरे हृदय को टुकड़े

टुकड़े कर डाला है। देवगति बलवान है, जो कुछ होना होता है वह होकर रहता है। अब धीरज धर। सास ससुर और माता पिता की आँखों पर पर्दा पड़ गया, उन की बुद्धि मारी गई। धोये हुए फूल के समान निर्दोष बालिका पर लाँछन लगाकर उसे इस प्रकार मौत के मुंह में फैंक देना, यह एक ऐसा पाप उन्हों ने किया है जिसका फल उन्हें भुगतना पड़ेगा। बेटी! अब रोने से क्या लाभ, जब तक तेरा मामा इस संसार में है तुझे क्या चिन्ता है। तू अपनी मामी के पास अपने घर चलकर बैठ। परमेश्वर ने चाहा तो थोड़े ही दिन में तेरे सब दुख दूर होंगे और वे लोग जिन्हों ने तुझ पर इतने जुल्म ढाये हैं पश्चाताप के आंसुओं से तेरे चरण धोएंगे।

सूर्य्य नारयण अपनी दिन भर की यात्रा समाप्त करने को थे। प्रखर संतप्त किरणें वृक्षों की चोटियों पर चमकने लगी थीं। शीतल वायु बन के वृक्षों और पशु पक्षियों को सुखद संदेश पहुंचा रहा था कि निर्भय होकर खेलो कूदो और आनन्द से बिचरो। सब जीव जन्तु प्रसन्न थे, परन्तु तपस्वी महात्मा एक टक आकाश में उस विमान की ओर दृष्टि बाँधे खड़े थे। जिसमें उनके आश्रम की मैना, उनके पर्ण कुटीर की ज्योत्सना अंजना अपनी सहचरी वसंतमाला के साथ उड़ी जा रही थी उनका हृदय उस समय अंजना के, हाँ उस अंजना के जिसने

कुछ ही महीनों में आश्रम को स्वर्गधाम बना दिया था। जिसके कोमल और सुन्दर हाथों के सिंचे हुए शुष्कलता पादप भी पुनः फल फूलों के भार से झुक गए थे। जिसके कर कमलों का प्यार लेने के लिये जंगली हरिण प्रतिदिन आश्रम में कल्लोल करते थे। आश्रम के शुक मैना आदि पत्ति जिसके मधुर स्वर का अनुकरण करते हुए अनेक मंत्र और श्लोकों का पाठ करने लगे थे। जिसके कोमल कर स्पर्श से प्रसन्न हुई हुई गौए दूध की धाराएं छोड़ने लगती थीं और जिसकी मीठी मीठी बातों से महात्मा अपने आप को सन्तानवत् मोह जाल में फंसा चुके थे, उसके एकाएक चले जाने से वे असह्य दुख से दुखी हो रहे थे। उस समय उनके नेत्रों से आँसू फूट पड़े थे। यद्यपि उस समय उन्होंने अपने हृदय के आवेग को दबाने की बहुत चेष्टा की परन्तु फिर एक ठंडा श्वास भरते हुए उनके मुख से यह शब्द निकल ही गए। "कुछ महीने रहकर इस कन्या ने मेरी यह दशा कर दी है यद्यपि यह मेरी अपनी संतान न थी, संसारी लोगो! तुम धन्य हो, सोलह सोलह वर्ष घरों में पाल कर अपनी प्यारी पुत्रियों को अपने हाथों सदा के लिये बिदा कर देना, हम बनबासी लोगों में यह समर्थ कहाँ? अंजना! तेरे वियोग की ज्वाला··················

अभी वे कुछ कहने ही को थे कि सहसा विमान से

गिरता हुआ बालक वायु मंडल में लुढ़कता नीचे आ रहा था।

तपस्वी महात्मा ने देखा तो उन्हीं पाओं उधर को भागे, वमान भी झपाटे से नीचे उतरा। परन्तु इससे पहले कि तपस्वी और विमान वहाँ पहुंच सकते, बालक एक पहाड़ी टीले की शिला पर धड़ाम से गिरा। अंजना के तन में प्राण न थे, वसन्त माला रोने लगी, रविसुन्दरी और महाराज प्रति-सूर्य्य का हृदय सूख रहा था। परन्तु वाह री प्रारब्ध ! टीले पर पहुंचे तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही, क्योंकि बालक पाओं का अंगूठा मुख में दिये ऐसे हंस रहा था, मानों फूलों पर पड़ा हो। वसंतमाला और अंजना के तन में प्राण आए। बालक को पोंछ कर हृदय से लगाया। तपस्वी महात्मा जो इस समय तक आश्चर्य्य चकित खड़े थे, रह न सके। अंगुलियों पर गिन कर बोलेः—

तपस्वी—बेटी अंजना ! यह बालक महान् योद्धा शूर वीर प्रतापी और बलवान होगा और इसकी वज्र के समान कठोर देह शत्रुओं का नाश करेगी। पुत्री ! आज से इसका नाम "वज्राङ्ग" हुआ।

चौदहवां परिच्छेद

खोज।

वन का पत्ता पत्ता छान लिया। पर्वत की भयानक कंदराएं एक एक करके सब देख लीं। इस बीहड़ अटवी स्थल की प्रत्येक कुञ्ज निकुञ्ज फिर देखा। नदी तट के मैदान और पहाड़ीयों के टीले सब के सब मेरी दृष्टि से गुज़र चुके। परन्तु उस प्यारी मूर्ति का, उस सौन्दर्य्य की प्रतिमा का, उस सती साध्वी मेरे हृदय की अधिष्ठात्री देवी अञ्जना का दर्शन न हुआ। माता पिता और सास सुसर से अपमानित वह देवी आज इस संसार में नहीं है। निस्सन्देह उस सती ने आत्माभिमान से प्रेरित होकर आत्म हत्या कर ली है। आज यदि वह जीवित होती तो इस बन के पशु पक्षि लता पादप उस के अस्तित्व की साक्षि देते। परन्तु यह सब चुप हैं। आकाश चुप है पृथ्वी चुप है, नदी नाले सब चुप हैं। ऊंचे ऊंचे वृक्ष उदासीन खड़े हैं। भगवान भास्कर क्रोध से रक्त मुख हुए इस पाप मयी पृथ्वी से आंखे फेर रहे हैं। कहीं

आनन्द नहीं, कहीं हर्ष नहीं । यह संसार शोक में डूब रहा है। (लम्बी सांस खैंच कर) आह विधाता ! तू ने मुझे कहीं का न रखा। एक एक करके मेरी समस्त आशाओं को चूर चूर कर दिया। सोचा था कि युद्ध में विजय हुई है, अब प्राण वल्लभा को जा कर देखूंगा। घर पहुंचा तो वह आशा मलिया मेट हो चुकी थी। महेन्द्र पुर गया तो वहां भी वही दशा देखी। मेरी आशा की अन्तिम झलक यह बन था परन्तु यहां भी उसे न पाया। अब मेरा जीना व्यर्थ है। उस तपस्विनी ने मेरे। वियोग में प्राण दे दिए उस के बिना मेरा जीना पाप है। मुझे प्राण देने होंगे; हां हां मैं मरूंगा। चकवा चकवी का वह दृश्य अब तक मेरी आंखों के सन्मुख नाच रहा है। अञ्जना ने मेरे प्रेम पर अपने आप को निछावर कर दिया,मैं उस के प्रेम पर अपनी अस्थियों के फूल चढ़ाऊंगा"।

पशु मुखा बन के मध्य में खड़े राज कुमार पवन के होंठ फरफरा रहे थे। उपरोक्त वचनों को कहते हुए उन का शरीर झुन झुना उठा था। उन की आंखों की पुतलीयां चारों दिशाओं में बड़ी तेज़ी से घूम रही थीं। सिर से पाओं तक वह पसीने से तर हो रहे थे। क्रोध और निराशा से उन का मुख पीला हो रहा था। "उस के प्रेम पर अपनी अस्थियों

के फूल चढ़ाऊंगा" इन शब्दों को कहते हुए उन्हों ने अपना कदम नदी की ओर बढ़ाया।

सन्ध्या होने वाली थी। सूर्य्य देवता घड़ी भर के पाहुने थे। तुंग भद्रा के शान्त नील सलिल में मछलीयां आंख मिचौनी खेल रहीं थीं। वायु के मन्द मन्द झौंके नदी की तरङ्गों से प्यार कर रहे थे। ऐसे सुहाने समय में यदि कोई और होता तो परमात्मा की इस विचित्र लील्हा को देख कर आनन्द के झूले झूलता। परन्तु पवन कुमार के लिये यह सब कुछ शोक मय था। नदी तट का घोर सन्नाटा उन के लिये मृत्यु का समय बांध रहा था तुङ्ग भद्रा का गंभीर जल ही उसे अपने गर्भ में ले कर अनन्त काल के लिये सुख में सुला देने का साधन था। राज कुमार आत्म हत्या के विचार को मन में दृढ़ करके अन्तिम बार उस प्रभु के ध्यान के लिये नदी तीर पर बैठ गए। इस समय उन के मन में मोह माया और जगत के किसी पदार्थ में भी प्रेम न था। नदी तट पर बैठ कर वे उस पूर्ण परमात्मा के ध्यान में मग्न हो गए, और यह उन की जीवन लील्हा का अन्तिम कृत्य था और इस के पश्चात् नदी के अन्दर 'धम" का एक गंभीर शब्द और उस को आकाश में उठती हुई एक तरङ्ग।

समाधि अवस्था में बैठे उन को आध घण्टे से अधिक

बीत गया। उन के हृदयमें परमात्मा के ध्यान के सिवा और क्या क्या विचार उठे यह वे जानें या परमात्मा। परन्तु हां एक वस्तु जिस ने उन के हृदय को हठात् अपनी ओर खैंच लिया, अत्यन्त आश्चर्य्य जनक थी और वह एक मधुर स्वर था। स्वर भी ऐसा कि जिसे सुनकर पवन क्या बड़े बड़े गन्धर्व भी अधीर हो जाते। पवन कुमार के कान उस मधुर स्वर की ओर लग गए ऐसा प्रतीत होता था मानों उस गाने ने उन के हताश हृदय में आशा का संचार कर दिया है। समाधि से निवृत्त हो कर वे खड़े हो गए। पल पल में वह सुरीला स्वर पास आ रहा था और उस के गाने के शब्द भी विषद् रूप से सुनाई देने लगे थे। भजन यह था—

दीना नाथ अब बार तुम्हारी।
पतित उधारन बिरदि जानिकै बिगरी लेहु संवारी।
बालापन खेलत ही खोयो युवा विषय रस माते।
बृद्ध भये सुधि प्रगटी मोको दुखित पुकारत ताते॥
सुतन तज्यो तिय तज्यो भ्रात तन त्वचा भई जु न्यारी।
श्रवण न सुनत चरण गति थाकी॥
पलित केश कफ कंठ विरोध्यौ कल न परी दिन राती।
माया मोह न छोड़े तृष्णा ए दोऊ दुख दाती॥

अब या व्यथा दूर करिवे को और न समरथ कोई।
दीन बन्धु प्रभु करुणा सागर तुम ते होई सो होई॥

स्वर क्या था एक स्वर्गीय बीणा का झंकार था जिस ने कुमार के कानों के साथ उन के नेत्रों को भी अपनी ओर आकर्षित कर लिया। कुछ क्षण निस्तब्ध अवस्था में वे उधर ही देख रहे थे कि एक सुन्दर नव युवक उन के सन्मुख आ खड़ा हुआ।

कुमार ने उसे देखा तो आश्चर्य से चकित रह गए। उन्हों ने विस्मित होकर पूछा।

कुमार—मदन! तुम यहां कैसे?

मदन—कुमार की जय हो जिस दिन से आप ने रत्नपुर छोड़ा है दास आप की खोज में था। परमात्मा का लाख वार धन्यवाद है जो आप के दर्शन हुए। रत्न पुर के नर नारी और स्वयं महाराज तथा राज माता आप के वियोग में मर रहे हैं।

कुमार—परन्तु मेरे वियोग में उन का रोना व्यर्थ है। मदन! तूने जा कर माता को मेरी अन्तिम प्रणाम देना और कहना कि कुमार अब इस संसार में नहीं है।

मदन—(साश्चार्य) परन्तु इस आत्महत्या का कारण?

कुमार—निर्दोष अंजना की मृत्यु।

मदन—अंजना की मृत्यु! कुमार! आप बिना सोचे समझे भूल कर रहे हैं। अंजना को अभी उसके मामा प्रति-सूर्य्य के घर जीती जागती इन आँखों ने देखा है। उसकी मृत्यु का सन्देह देकर किसी पापी ने अपना बदला लेने की ठानी है।

कुमार—(साश्चार्य्य) हाँय! क्या अंजना जीती है?

मदन—अवश्य जीती है। मैं शपथ खाकर कर कहता हूं कि इसमें तनिक भी झूठ नहीं है। कुमार मैंने! उसे अपनी आँखों देखा है।

पवनकुमार का मुख मण्डल एकाएक लाल हो गया उनके उद्विग्न नेत्र हर्ष से चमकने लगे। मदन के समाचार से उनके शरीर में रोमाञ्च हो आया, मानों सूर्य्य के संताप से दग्ध हुई भूमि पर एकाएक वृष्टि हो गई हो। वे मदन की ओर लक्ष्य करके बोलेः—

कुमार—मदन! तेरे इस उपकार को मैं जब तक जीता रहूंगा कभी न भूलूंगा। ऐसे विकट समय पर आकर तूने दो प्राणियों को मृत्यु की डाढ़ से बाहर निकाल लिया है।

मदन—कुमार के लिये यह दास प्राण देने को उद्यत है इसमें मेरा उपकार कैसा, इस दास का तो शरीर ही आप के

टुकड़ों से पला है। हाँ यह जानकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि समय पर मेरे हाथों स्वामी की सेवा हुई है।

यह कह कर मदन ने कुमार के चरणों को छूआ और विदाई के लिये आज्ञा माँगी।

कुमार ने कृतज्ञता के नेत्रों से मदन को विदा किया और एक विशेष उमङ्ग के साथ नदी तट से वापस लौटे।

पन्द्रहवां परिच्छेद ।
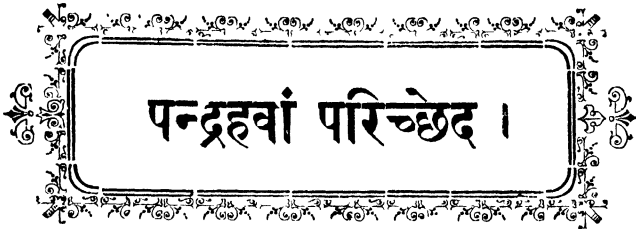
पश्चाताप

दिन के नौ बजे हैं । रत्नपुर नगर में इस समय बड़ी धूमधाम है । व्यास पूजा का दिन, प्रत्येक नर नारी अपने अपने गुरुदेव और आचार्य्य की पूजा अर्चना की सामग्री जुटाने में मग्न हो रहे हैं । हाट बाज़ार ग्राहकों से ठसाठस भर रहे हैं । हलवाई, पंसारी और फल फुलवारी की दुकानों पर तो बार नहीं आती । घर घर में गृहस्थी लोग बच्चों में आनन्द मना रहे हैं । आज अपने पुराने गुरुकुल के दर्शन होंगे । बाल्य काल के पच्चीस पच्चीस और तीस तीस वर्ष जिस गुरुकुल में व्यतीत हुए हैं, जहां अपने सहपाठियों के साथ आयु का एक बड़ा भाग विद्याभ्यास करते खेलते कूदते और आनन्द मनाते सुख से व्यतीत किए हैं, वृक्षों के ऊपर चढ़ चढ़ कर आश्रम के जिन वृक्षों के फल तोड़ तोड़ कर खाये हैं, जहां तरकारियां बीज २ कर अपने हाथ से उन्हें सींचा है, जिस गुरुकुल आश्रम के

हवन के लिये बन में से लकड़ियां काट काट कर लायी हैं, उसके दर्शन आज फिर होंगे। आज सारे विद्यार्थी इकट्ठे होंगे, बाल्यावस्था का प्रेम बाल्यावस्था का दृश्य, बाल्यावस्था के मित्र और सब से बढ़कर वे गुरु जिन्हों ने पिता के समान पालन पोषण किया है आज उनके दर्शन होंगे। इस भाव ने लोगों के हृदय के अंदर प्रेम और श्रद्धा का स्रोत बहा दिया है और उसी में बहे जाते वे नाना प्रकार की सामग्री ख़रीद रहे हैं। परन्तु पाठक! तनिक राजमहल की अवस्था देखिये, आज के दिन राजमहल के आस पास सहस्रों भिखमंगे दान लेते दिखाई देते थे। नौकर चाकर सोने चांदी और धन दौलत से भरपूर हो जाते थे गुरुदेव पूजन के लिये महाराज की सवारी की तय्यारी पर बाज़ार सजाए जाते थे। परन्तु आज राजमहल में सन्नाटा छाया हुआ है। नौकर चाकर दास दासी सब उदासीन हैं। महारानी केतुमती महाराज प्रहलाद विद्याधर के सन्मुख सिर झुकाए बैठी है। महारानी को चिन्तातुर देखकर महाराज उसे धीरज बंधाते हुए कह रहे हैं।

महाराज—प्रिये! इस प्रकार चिन्तित होने से क्या बनेगा। कुमार कोई बालक नहीं है, अपने आप आ जायेंगे।

महारानी—(गहरा सांस भर कर) स्वामिन्! घर से

निकले उन्हें आज दो मास से ऊपर हो गए। सैंकड़ों गुप्तचर उन के पीछे दौड़ाये गये, परन्तु किसी ने उन का पता न दिया कि वे कहां हैं।

महाराज--घबराने की बात नहीं, वे दो दो वर्ष अकेले बाहर रह आए हैं। सैंकड़ों ऊच नीच देखे हैं. आज नहीं कल, दो चार दिन तक अवश्य पता मिल जायगा। उठो, इस चिन्ता को छोड़ो। व्यास पूजा का मङ्गल दिवस है। इस प्रकार रोना धोना उचित नहीं।

महारानी—मैं क्या करूं, मन को बहुतेरा समझाता हूं पर नहीं समझता। उन के अन्तिम शब्द जब मुझे याद आते हैं तो कलेजा कांप उठता है। 'आत्म हत्या' का शब्द स्मरण होते ही मेरे नेत्रों के सन्मुख अन्धकार छा जाता है। हाय! मेरी बुद्धि पर पत्थर पड़ गए मैंने निर्दोष अञ्जना को घर से निकाल कर, अपना सर्वस्व नाश कर लिया। ललिता! तेरा बुरा हो तूने मेरे साथ कौन से जन्म का बैर लिया।

महारानी केतुमती पुत्र शोक में इस प्रकार आतुर हुई बैठी थी कि द्वारपाल ने आकर प्रणाम की "महाराज की जय हो। गुप्तचर तेजपाल द्वार पर खड़े हैं।

महाराज—सादर अन्दर आने दो।

तेजपाल को अन्दर आते देख कर महाराज मुस्कराते हुए बोले।

महाराज—कहो तेज पाल क्या समाचार लाए?

तेजपाल—महाराज की जय हो, अञ्जना देवी अपने मामा महाराज प्रति सूर्य्य के गृह में आ गई हैं।

महारानी—और कुमार?

तेजपाल—कुमार का अभी तक कुछ पता नहीं मिला, हां राज महल के दारोगा मदन से मुझे इतना मालूम हो सका है कि वे जीवित जाग्रत पशु मुखा बन में उसे मिले थे। उस के कथन पर विश्वास करके यह दास पशु मुखा बन में गया परन्तु बहुत खोज करने पर भी वहां उन को न पा सका।

महाराज—अञ्जना आ गई, अच्छा हुआ आशा है थोड़े दिन तक कुमार भी आ जायंगे। घबराने की कोई बात नहीं, जाओ शीघ्र जा कर उस का पता लो।

'जो आज्ञा महाराज की" यह कह कर तेज पाल ने घुटनों के बल प्रणाम की और महल से बाहर हुआ।

अञ्जना के आने का समाचार नगर नगर और गाओं में फैल गया था। इधर रत्नपुर के घर घर में उस के सतीत्व

की कहानीयां हो रही थीं तो उधर महेन्द्र पुर में घर २ मङ्गल हो रहा था। महारानी वेग मोहनीने तो जब से यह समाचार सुना, उस के लिए एक पल एक वर्ष के समान बीत रहा था। जी चाहता था कि उड़कर अपनी प्यारी पुत्री को छाती से लगा ले, और चाहता भी क्यों न, वर्षों की बिछड़ी हुई, गर्भ की अवस्था, सती साध्वी निर्दोष, और सब से बढ़ कर यह कि अपने जिगर का टुकड़ा, उसके मिलने के लिये हृदय का उछलना स्वभाविक ही था।

चलने की तैयारी की गई, यथा संभव शीघ्र रथको द्वार पर लाकर खड़ा किया गया. और महाराज महेन्द्र राय महारानी केतु मती के सहित उस में विराज मान हुए।

हनुमान पुर के राजमहल में अञ्जना देवी अपनी सखि वसंत माला के साथ बैठी है। महारानी रविसुन्दरी ने उस के जी बहलाव के लिये किसी प्रकार की कोई कसर नहीं रक्खी। उस के अपने घर में कोई सन्तान न थी। अञ्जना के आने पर उस का मन अत्यन्त प्रसन्न था अञ्जना का पुत्र हनुमान दिन भर उसी की गोद में खेलता, सुतरां इस समय भी वह उसी को गोद में लिये खेल रही है। बसन्त माला पास खड़ी उसे लोरियां दे रही है।

आ मेरे लल्ला आ हनुमान।
जग में होगा तू बलवान ॥

वज्र समान तेरी हो देह।
शत्रु हों सब तेरे खेह ॥

अञ्जना की अखियों का तारा।
विपत दिनों का तूही सहारा ॥

बन में जन्मा बानर काम।
बानर तेरा रक्खूं नाम ॥

वाह मेरे छौना वाह वाह वाह।
नाच नाच के तनिक दिखा।

बालक हंस २ किलकारियां मार रहा है। यह सब कुछ होते हुए भी अञ्जना का मन बुझा सा रहता है। उठते बैठते सोते जागते इस के मन में एक ही ध्यान लगा रहता है "वे कब आयंगे" यह शब्द रात्रि को स्वप्न में भी उस के मुख से हड़बड़ा कर निकल जाते हैं। खाने बैठती है तो यही बात सोचती रहती है। सच है स्त्री के लिये पति के बिना संसार अंधकार मय है। टूटा फूटा छप्पर और रूखा सूखा अन्न खा कर पति के साथ रहती हुई स्त्री का जो आदर और मान

है, पति के बिना महलों में रहते हुए और अच्छे अच्छे पदार्थ खाते हुए भी नहीं है। पतिव्रता स्त्री पति के वियोग में संसार के सकल भोग ऐश्वर्यों पर लात मारती है। यही दशा आज सती अञ्जना की है। सकल सुखों के होते हुए भी वह हृदय में दुख छिपाये बैठी है। बन से निकल कर मामू के घर आये आज उसे लगभग दो मास हो चुके हैं परन्तु उस के मुख पर उदासीनता बरस रही हैं। अस्तु, आज भी वह उसी प्रकार अपने इस गुप्त रोग को दबाए बैठी थी कि विमला दासी हंसती हुई अन्दर आई और अञ्जना को लक्ष्य करके बोली।

विमला—बहन अञ्जना ! बधाई हो जीजा जी तुम्हें लेने आए हैं।

अञ्जना—क्या पिता जी आए हैं ?

विमला—हां और साथ भूआ जी।

अभी विमला पूरा संदेश भी न दे पाई थी कि महारानी वेग मोहनी अन्दर ही आ गई।

अञ्जना ने माता को देखा तो वह दौड़ कर उस के कंठ का हार हो गई। बर्षों का वियोगाग्नि सहसा प्रज्वलित हो उठा। नेत्रों से जल का फुवारा फूट निकला महारानी वेग मोहनी की इस समय क्या अवस्था थी; इस के वर्णन

करने की सामर्थ्य हमारी लेखनी में नहीं है। (मात्र प्रेम को लेखनी द्वारा पूर्ण रूप से वर्णन करने वाला कोई कवि आज तक संसार में उत्पन्न नहीं हुआ। मातृऽप्रेम का रूप बांधना ऐसा ही है जैसा गूंगे का कथन करना और पंगु का पर्वत पर चढ़ना) हां बेग मोहनी के हृदय की अवस्था जानने के लिये हम पाठक वा पठिकाओं से प्रेरणा करेंगे कि वे अपनी माताओं से ही पूछ देखें कि छुटपन में उन्होंने उन के प्रेम में क्या क्या दुःख उठाए हैं।

बालक को उछलते देख कर महारानी ने उसे अपनी गोद में ले लिया। बालकों को चमकीले पदार्थ बड़े प्यारे लगते हैं, महारानी के कानों पर दृष्टि गई तो ज़ोर से उसकी बालियां खींच लीं। महारानी के कान खिंचते देख कर रवि सुन्दरी रह न सकी और खिल-खिला कर बोल उठी " हां हां बेटा! ज़रा नानी की ख़बर लो "।

इस प्रकार के मेल मिलाप और आनन्द मंगल का दिन गुज़रते मालूम नहीं होता। इन्हीं बातों में दिन ढल गया। सांझ हुई तो महाराज महेन्द्र राय अंजना के पास आये और कहने लगे -

महेन्द्र राय—बेटी! महेन्द्रपुर के नर नारी तुझे देखने को आतुर हो रहे हैं। दो वर्ष का कठिन वियोग मेरे हृदय को जला रहा है। अपने किये पर पश्चाताप करता हुआ मैं दर्बार

में बैठने से लज्जित हूं। पुत्रि! महेन्द्रपुर चल कर अपने पिता के कलंक को धो डाल, तेरा भाई इस समय न जाने किस व्याकुलता से तेरी बाट देख रहा होगा।

अंजना ने, जो इस समय तक मस्तक झुकाए बैठी थी; सिर ऊंचा किया और कहा :—

पिता जी! माता पिता को संतान का वियोग अत्यंतदुखदा होता है, यह स्वाभाविक ही है। परन्तु अबपश्चाताप कैसा, भावी बड़ी बलवान है। बड़े२ देवता भी प्रारब्ध के चक्कर से बच नहीं सके। आप ने जो कुछ किया उचित ही किया। सुसराल से निकाली हुई बेटी को यदि आप अपने घर में आश्रय देते तो निस्सन्देह संसार की व्यवस्था बिगड़ जाती। यथा राजा तथा प्रजा के न्याय से सर्व साधारण प्रजा में घर घर कलह क्लेश होने लगता। माता पिता पुत्रियों की तनिक सी शिकायत पर उन्हें अपने घरों में रखने लगते और इस सारी अव्यवस्था, इस सारे पाप का कारण एकमात्र आप बनते, यह मैं भली भान्ति समझती थी और अब भी समझती हूं। परन्तु इस समय जब कि कुमार मेरी खोज में बन बन फिर रहे हैं, और उन्हें मेरे यहां आने का कुछ ज्ञान नहीं है मेरा अकेले महेन्द्रपुर चले जाना और सुख पूर्वक महल में रहना कहां तक उचित

है, यह आप समझ सकते हैं। लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे ? स्त्री का पति के बिना अन्न खाना भी पाप है और यह पाप उन के पुनर्मिलन की आशा में मैंने न चाहते हुए भी किया। परन्तु अब मैं घर में न रह कर उनकी खोज में जाऊंगी, और प्रतिज्ञा करती हूं कि यदि उन की भेंट हो गई तो उन के साथ आप के चरणों का दर्शन करूंगी और परमेश्वर न करे, यदि इस से उलट कुछ और हुआ तो यह मेरी अंतिम प्रणाम है, इस के पश्चात् आप अंजना को इस पृथ्वी पर न देखेंगे।

महाराज इस समय तक चुप थे परंतु अंजना के अंतिम शब्दों ने उन को सिर से पाओं तक कंपा दिया। घबराये से बोलेः—

अंजना ! अंजना !! मृत्यु के मुख से निकल कर एक वार फिर उस में प्रवेश करना .... पुत्रि ! धीरज धर, कुमार की खोज के लिए मैं स्वयं जाता हूं, आज ही अपने चतुर गुप्तचरों को नगर-नगर और बन-बन में भेजता हूं, जो शीघ्र ही कुमार का पता लावेंगे। तेरा अकेले जाना इस समय उचित नहीं है।

अंजना—पिताजी ! जब आप स्वयं जाते हैं तो फिर मुझे साथ जाने में क्या भय है ? आज तक मैं एक अबला थी परन्तु इस समय मैं एक वीर क्षत्राणी स्त्री हूं। क्षत्राणियों

को भय कहां, आप निश्चिन्त रहिए । मुझे विश्वास है कि वे पशुमुखा बन में ही गये हैं और उस बन के पत्ते-पत्ते से मैं भली भान्ति परिचित हूं।

महाराज को अंजना के साथ ले जाने में कोई आपत्ति न थी, उन्हों ने उस की बात को सहर्ष स्वीकार किया और उसी समय चलने की तैय्यारी कर दी। महाराज प्रतिसूर्य्य ने यह सुना तो वे भी तैय्यार हो गए। अंजना ने बालक को वसंतमाला के हाथ सौंपा और बोली—

" वसंत ! यदि मैं लौट कर न आई तो आज से तू वज्रांग को अपना पुत्र समझियो ! "

सोलहवां परिच्छेद

मिलाप।

रात्रि से प्रातः काल और प्रातः काल से फिर रात्रि होने को आई है। पशुमुखा बन में घोर सन्नाटा है। अंधकार ने अपने लंबे लंबे डग पसारने आरम्भ कर दिये हैं। महाराज महेन्द्रराय और उन के चतुर दूतों ने बन की चप्पा चप्पा भूमि छान मारी परन्तु जिस की खोज में आये थे उस की कहीं गन्ध तक भी नहीं मिली। अंजना अपने दल से पृथक हो कर अकेली ही घूम रही है। आज प्रातः काल से उस के कंठ में जल का एक बिन्दु तक भी नहीं गया। पवनकुमार के वियोग में बावली हुई हुई वह माता पिता और सकल संसार को भूल कर अपने प्यारे की खोज में मारी मारी फिर रही है। ज्यों२ समय व्यतीत होता जाता है त्यों त्यों वह अपने वचन पर दृढ़ हुई हुई आगे ही आगे बढ़ रही है। "यदि वे न मिले तो इसी प्रकार निराहार रह कर प्राण त्याग दूंगी" इस विचार से उसने अपनेसाथियों को जहां तक हो सके दूर छोड़ देना ही

उचित समझा। आज उसने कितना चक्कर काटा है, इसकी साक्षी उसके फूले हुए पाओं दे रहे हैं। प्रातः काल से घूमते हुए रात्रि के नौ बज गए हैं, परन्तु वह एक क्षण भी कहीं नहीं बैठी। अब जब कि मारे अंधकार के अपना हाथ पसारा भी नहीं सूझता उसने पागलों की न्याई, पुकारना शुरु कर दिया। "प्राणपति! किधर हो ? हृदयेश! आप की दासी आप के वियोग में मर रही है" परन्तु वहां कौन था जो उसे उत्तर देता? अन्धकार में किसी रुण्ड वृक्ष को देखती तो दौड़ कर उस के पाओं पड़ जाती 'अहो प्यारे! आप यहां हैं?" किसी वन्य जन्तु का हुंकार सुनती तो जोर से चिल्ला उठती "प्यारे! प्यारे!! आप कहां बोल रहे हैं।"

इस अन्धकार में जब कि उस के जीवन का दीपक भूख, प्यास, थकान और उन्माद से क्षण क्षण में क्षीण हो रहा था, अकस्मात एक टीले पर घने वृक्षों के जमघट के बीच कुछ प्रकाश सा हुआ, जिस से दूर दूर की भूमि चमक उठी, अंजना ने देखा तो हठात् उधर को दौड़ी। रात्रि का समय, बन की ऊबड़ खाबड़ और कंटीली भूमि ने उसके पाओं को छलनी कर दिया। किसी कवि ने सच कहा है:—

जिन्हों को लागे प्रेम के बाण।
जगत जाने वे हैं बावरे पर हैं वे अंतर्ध्यान॥

अञ्जना-हनुमान्

अञ्जना दूसरे ही क्षण अपने प्राणपति की गोद में थी, परन्तु इसका उसे कुछ ज्ञान न था।

पृष्ठ नं० ११७

प्रेमको अग्नि जिस के हृदय को लग गई है, उस के लिये कांटे फूल हैं, मृत्यु जीवन है। पतंगे को लाख कहो, दीपक की लाट तक पहुँचने पर राख हो जाओगे। भ्रमर को कहो, कमल के अन्दर न बैठ, मर जायगा, पर कौन सुनता है? प्रेम के लिये बाहर के किवाड़ बन्द होते हैं, वह अन्दर का शब्द सुनता है, अन्दर दर्शन ही का करता है। अंजना की दशा पतंगे से भी बढ़ कर हो गई थी, वह उधर को दौड़ी और ज्यों त्यों करके उस कुटिया पर पहुंची जहां से वह प्रकाश निकल रहा था।

कुटिया के अन्दर झांका तो सहसा उस की दशा और की और हो गई। उस के पाओं थर्राए हृदय धड़का, मस्तक ने चक्कर खाया और मुंह से हठात् चीख निकल गई "प्यारे"।

और वह दूसरे ही क्षण अपने प्राणपति पवन की गोद में थी। परन्तु उस को इसका कुछ ज्ञान न था। वह घोर मूर्छा में मूर्छित हो गई थी।

मूर्छा खुली तो चारों नेत्रों से प्रेम की नदी बह निकली। वर्षों की वियोगाग्नि नेत्रों के जल से ठंडी हुई। ग्रीष्म ऋतु की संतप्त मरु भूमि पावस ऋतु की प्रथम वृष्टि से पुलकित हो उठी। अंजना का हृदय मयूर के समान नाचने लगा, उस के शरीर पर एकाएक सौन्दर्य्य का बादल बरस गया।

इधर अर्ध रात्रि व्यतीत हो जाने पर भी जब अञ्जन अपने दल में न लौटी, तो महाराज महेन्द्रराय और उनके साथी बहुत घबरा गए। अन्धेरे बन में बीसीयों लालटैनें घूम रहीं थीं। कर्मचारीगण हाथ में बत्तीयां लिये राजकुमारी की खोज कर रहे थे कि वही प्रकाश उनको भी दिखाई दिया। महाराज अपने दल सहित टीले पर पहुंचे। कुटिया के अन्दर दृष्टि डाली तो सब के हृदय आनन्द से भर गए। अञ्जना और पवनकुमार के इस अकस्मात् मिलाप ने सब के मन को प्रसन्नता से भरपूर कर दिया। महाराज ने ज्यों ही द्वार के अन्दर पाओं रखे कि वह युगल जोड़ी उन के चरणों में थी।

रहस्य भेद ।

ललिता को देखे आज डेढ़ वर्ष से ऊपर हो गया। जिस दिन से वह विद्युतप्रभ के मकान से निकली है, उसका कुछ पता नहीं कि वह कहां गई और उस का क्या हुआ। उस का पीछा करने [illegible] विद्युतप्रभ महेन्द्रपुर की धर्मशाला के दारोगा के हाथों मारा गया। अञ्जना के देश निकाले और उस के कलङ्क की घटना को आज सोलह वर्ष से ऊपर हो चुके। पवन को सिंहासन पर बैठे कई वर्ष हो गए। जिस दिन कुमार अञ्जना को लेकर रत्नपुर में वापिस आए उसी दिन महाराज प्रहलाद विद्याधर ने महारानी केतुमती के साथ वानप्रस्थ धारण कर लिया और अब सारे राज्य की बाग-डोर महाराज पवन के हाथ में है। यह सब कुछ हुआ परन्तु ललिता का कुछ पता नहीं। उसे बहुत ढूंढा, बहुत खोज की, परन्तु सब ने हार कर यही उत्तर दिया कि उस का कुछ पता नहीं।

कोई कहता कि ललिता ने राजमाता को अंजना के विरुद्ध उकसाया था इस लिए भयभीत होकर भाग गई। किसी ने उस की आत्म-हत्या की कहानी सुनाई। किसी ने कहा वह नदी में डूब कर मर गई, मैंने उसे अपनी आंखों डूबते देखा है। अर्थात् जितने मुंह उतनी बातें थीं, परन्तु सच तो यह है कि बहुत खोज करने पर भी किसी ने उसका पता न पाया।

एक दिन महाराज पवन दर्बार से उठकर अपनी परम प्रिय महारानी अञ्जना के साथ सुख से बात-चीत कर रहे थे। दास दासियां सेवा में लग रही थीं। राजकुमार वज्र देह अपनी छोटी सी तलवार से पट्टा खेल कर माता पिता को प्रसन्न कर रहे थे, कि इतने में द्वारपाल ने प्रवेश किया और लम्बी दण्डवत् के पश्चात् एक बन्द लिफ़ाफ़ा महाराज के सामने रख दिया। लिफ़ाफ़ा खोला तो बीच में लिखा था।

"प्राण कण्ठ में अटके हैं एक बार दर्शन"

आप की दासी

"ललिता"

कोठड़ी संख्या २१ राजमहल"

पत्र को पढ़ा तो महाराज ने आश्चर्य्य से अञ्जना की ओर देख कर कहाः—

क्या मुर्दा जी उठा? दस वर्ष से भागी हुई ललिता

आज राजमहल की बाईसवीं कोठड़ी अर्थात् मदन दारोग़ा की कोठड़ी में एकाएक कैसे ?

अञ्जना—बड़े आश्चर्य की बात है, तो क्या आप जाएंगे ?

पवन—अवश्य जाऊंगा। उस की भेंट से किसी गुप्त रहस्य के प्रकाश में आने की संभावना है। महारानी ! आप भी चलें।

दरोग़ा मदन की कोठड़ी में महाराज पवन अंजना सहित पहुंचे। कोठड़ी के अन्दर मदन एक टूटी खाट पर पड़ा अकड़ रहा था। उस के मुख पर स्याही फैल चुकी थी। आंखें अन्दर को धंस गई थीं, कोये सफ़ेद हो चुके थे और गाल पिचक गये थे।

महाराज पवन आये तो उस ने अपने सिकुड़े हुए हाथ से संकेत करते हुए उन्हें बैठ जाने की प्रार्थना की। महाराज और महारानी दोनों उस के पास आसन पर बैठ गए तो उस ने धीरे से होंट खोले।

मदन—महारानी ! आप मुझे पहचानती हैं ?

अञ्जना—हां हां पहचानती हूं, मदन ! आज तुम कैसी बहकी बातें कर रहे हो ?

मदन--मैं मदन नहीं हूं, महारानी आप भूलती हैं। एक वार कहो कि आप ने मुझे क्षमा किया।

अञ्जना—मदन नहीं तो फिर तुम कौन हो? मैंने तुम को क्षमा किया और हृदय से क्षमा किया चाहे तुम कोई भी हो।

'क्षमा' का शब्द सुनकर मदन ने शान्ति का सांस लिया और साथ ही एक हाथ से अपने सिर की पगड़ी उतार दी और दूसरे से छोटी छोटी मूछों को उतार कर दूर फैंक दिया।

लहराते हुए केश और गोल चेहरे ने तत्काल अञ्जना की आंखों से पर्दा हटा दिया और उस के मुख से सहसा यह निकला। 'ललिता !

ललिता के श्वास उखड़ रहे थे; फिर भी उस ने अन्तिम बार बोलने का प्रयत्न किया।

महारानी ! ललिता............अब..........इस.....सं.......सार............में नहीं है...................आत्म-हत्या........आत्म...... ....ओह ....पानी............

यह कहते हुए उस ने अपने सिरहाने से एक लिफ़ाफ़ा निकाल कर अञ्जना के हाथ में दिया।

अञ्जना ने लिफ़ाफ़ा हाथ में लेते हुए कहा-ललिता !

तूने अनर्थ किया. हाय, हाय, तूने बड़ा भयंकर काम किया।

ललिता इस समय बेसुध हो रही थी। हालाहल विष अपना काम कर चुका था। जिह्वा अन्दर को खिंची जा रही थी। उस ने अञ्जना की बात का कोई उत्तर न दिया और केवल लिफ़ाफे की ओर संकेत करके अपने मनोगत भाव को प्रगट कर दिया।

महाराज पवन ने उस के मुख में बारबार जल टपकाया परन्तु सब व्यर्थ। अन्तिम बार उस के मुख से "क्ष......मा" "क्ष.........मा"......का शब्द निकला और बस।

ललिता इस पाप मय संसार से उठ गई। उस ने अपने पाप का प्रायश्चित आत्म-हत्या करके कर लिया। उस की मृत्यु ने अञ्जना और पवन दोनों के भावों में एकाएक परिवर्तन सा उत्पन्न कर दिया। जिस को दण्ड देने के लिये दस वर्ष से खोज हो रही थी उस की मृत्यु के हृदय वेधक दृष्य ने उन के अन्दर एक विशेष भाव को जागृत कर दिया। उन्होंने ललिता के लिफ़ाफे को खोला। लिखा था—

"महाराज पवन तथा महारानी अञ्जना! आप ने महल

दारोगा विद्युतप्रभ को निकाल कर मुझ पर उतना ही अनर्थ किया जितना कि अञ्जना का परित्याग करके महाराज ने उस पर किया। इस का एकमात्र कारण मेरा उस पर वह प्रेम था जिस ने बाद में मुझ से बहुत ही दूषित कर्म करवाए। विद्युतप्रभ मेरे हृदय का इष्टदेव था, यह बात किसी प्रकार महारानी को मालूम हो गई। वह राज सेवा से पृथक कर दिया गया। नौकरी से पृथक हुआ विद्युतप्रभ प्रतिकार की आग में जलने लगा और उस दिन से अञ्जना को दुःख देना उस ने उचितम् अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया। इस काम में उस ने मुझे अपना शस्त्र बनाया। मैं महारानी की मुंहलगी दासी थी। अंजना के विरुद्ध महारानी के कान भरती रही, और इस कार्य्य में मैंने सफलता भी प्राप्त की अर्थात् निर्दोष अंजना को, क्योंकि मैं जानती थी कि वह निर्दोष है, राज्य से बाहर निकलवा दिया। यह मैंने एक ऐसा पाप किया कि जिस का प्रायश्चित है ही नहीं। परन्तु इस दूषित कर्म के अन्दर उसी देवता का हाथ था जो विद्युतप्रभ की रसीली आंखों में और मृदु मुस्कान में निवास करता था। मैं उस के प्रेम में अन्धी हो कर सब कुछ कर गुजरी, क्योंकि मैं समझती थी कि अंजना का देश-निर्वासन ही मेरी और विद्युतप्रभ की अटल मित्रता की एक

शर्त है। जब शर्त पूरी हो गई तो मैंने विद्युप्रभ को उस की प्रतिज्ञा याद करवाई और विवाह के बंधन में बंध जाने की प्रेरणा की परन्तु उसकी दूसरी शर्त ने मेरे हृदय को तोड़ दिया और मेरा उस पर से विश्वास उठ गया। वह शर्त थी अंजना की बनवास अवस्था में हत्या। यह एक ऐसा काम था जिसे कदाचित् ही कोई स्त्री करेगी। स्त्रियां हत्या के नाम से कांपती हैं और कभी कभी तो इस बात से अपने प्रेमियों पर से उन का प्रेम उठ जाता है। यही अवस्था मेरी हुई, मेरा प्रेम विद्युतके इस कर्म से सहसा घृणा और भय में बदल गया। मैंने उन का साथ छोड़ दिया और उस दिन से हम दोनों एक दूसरे की जान के शत्रु हो गए। जिस दिन से विद्युतप्रभ के साथ मेरी शत्रुता हुई, उसी दिन से मेरा मन अपने किये पर पश्चाताप करने लगा। दुष्ट विद्युतप्रभ के हाथों अंजना को बचाना उचित है, इसी विचार से मैंने रत्नपुर को छोड़ कर अंजना के पीछे पीछे रहने की ठान ली। मेरा यह विचार निरर्थक नहीं गया क्योंकि पशुमुखा बन में मैंने पुरुष-वेष में विद्युतप्रभके कलेजे में कटार भोंक कर मरती हुई अंजना को बचा लिया। उस के पश्चात् मैं आप को तुंगभद्रा के तट पर मिली, जब आप प्रेम के वश में हो कर वह कुछ करना चाहते थे, जो कुछ कि मैंने इस समय कर डाला है। यह सब कुछ हो

गया, परन्तु मेरे हृदय का बोझ हल्का न हुआ। क्योंकि मेरे पापों के पर्वत के सन्मुख यह कर्म एक खसखस के दाने के बराबर था। किसी न किसी प्रकार इस बोझ को हल्का करना चाहिये, इस विचार से मैं विद्युतप्रभके स्थान पर मदन के रूप में महल की सेवा पर लगी। परन्तु कहते हैं किये हुए पाप का फल अवश्य मिलता है। मेरी दशा दिन पर दिन बिगड़ती गई,पाप का वह छोटा सा दाग सोलह वर्ष के अन्दर फैल कर बहुत बड़ा हो गया, छोटा सा बीज वृक्ष बन गया। अंजना का अतीत—दुःख लौट कर मेरी छाती पर सवार हो गया, और अब रात दिन सोते जागते, उठते बैठते एक ही विचार मेरे मस्तिक पर सवार हो गया। अन्त में इस विचार को मैंने पूरा कर लिया, अपनी सिसकती हुई आत्मा को हालाहल विष पिला कर इस पापी शरीर से अलग कर दिया अब मैं शान्त हूं, आप ने मुझे क्षमा कर दिया, इस विचार ने मेरी आत्मा को शान्त कर दिया है।

आपकी दासी ललिता।

अञ्जना ने ललिता के इस पत्र को सुना तो उस की आँखों से आँसु निकल गए। ललिता के इस भयानक प्रायश्चित में उस का पुराना बैर बह गया। वह रोकर बोली:—

"हाय! ललिता! तैंने यह क्या कर डाला!

———

महावीर वज्रांग

सुख के दिन जाते पता नहीं लगता। अंजना के दुःखों का अन्त हुए सोलह वर्ष व्यतीत हो गए। अब अंजना वह विपत्ति की मारी दुखियारी अंजना नहीं है, प्रत्युत आज उस के सुख का वार पार नहीं, आज वह महारानी अंजना है। आज वह अपने प्राण पति पवन के साथ सिंहासन पर विराजमान सारे देश पर शासन कर रही है। उस की दया और शुभ कामना से प्रजा पर सुख और शान्ति बरस रही है, उस के सारे राज्य में एक भी मनुष्य भूखा नहीं रहता, प्राणि मात्र सांझ सवेरे संध्या करते हुए महाराज पवन और महारानी अंजना को दीर्घायु के लिये परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं। वज्रांग जो कल अभी अंजना की गोद में खेलता था आज पूरा जवान हो चुका है। देशदेशान्तरों में आज वज्रांग

के बल पराक्रम और वीरता की वह धूम है, कि वेद वेत्ता ब्राह्मणों और धनुषधारी क्षत्रियों ने उस को महावीर की पदवी प्रदान करने के लिए महाराज पवन से प्रार्थना की है। महावीर वज्रांग ने अपने बाहु और बुद्धि बल से एक एक करके अपने सब शत्रुओं को पछाड़ डाला है, और पवन अपनी राजधानी में राज्य भोगते हुए परमसुख से सुखी हैं।

यही कारण है कि आज रत्नपुर में बड़ी धूमधाम है, बाल वृद्ध नर नारी जिधर देखो महावीर वज्रांग के गुणों की चर्चा कर रहे हैं। महाराज ने वज्रांग को महावीर की पदवी देने के लिए आज दीवान आम किया है, जिस में सम्मिलित होने के लिये राज्य के बड़े बड़े अधिकारी सुनहरी और रूपहरी बर्दियां पहरे रथों पर जा रहे हैं, बड़े बड़े सेठ साहुकार बड़ी सजधज के साथ महावीर के दर्शनों की उत्कंठा से दर्बार चलने की तैयारियां कर रहे हैं। आज आयु भर का दारिद्र्य दूर हो जायेगा, इस विचार से लम्बे लम्बे तिलक लगाकर भूदेव ब्राह्मण भी राज सभा की ओर पधार रहे हैं। पाठक! आज दर्बार में जाने की किसी को रुकावट नहीं; आओ हम भी अन्दर जा कर दर्बार की शोभा देखें। अहहं! दर्बार क्या हैं स्वयं इन्द्र की राज सभा है, जिस में सोने चांदी के आसनों पर बैठे हुए मांडलीक राजा शोभा दे रहे हैं। हीरे

मोती पन्ने तथा अन्य मणियों से अलंकृत हुई छतों तथा दीवारों पर लटकते हुए रेशमी वस्त्रों की सुनहरी छबि देखते ही आंखें चुंधिया जाती हैं, अन्दर जाते ही प्रतीत होता है मानों सारे संसार का ऐश्वर्य यहीं एकट्ठा हो गया है। मणियों से जड़े हुए सिंहासन पर बैठे महाराज पवन की दाईं ओर राजकुमार महावीर वज्रांग द्वितीया के चन्द्रमा के समान शोभा दे रहे हैं। जब राज दरबार के सब दरबारी और नगर के धनी सेठ अपने २ आसनों पर बैठ गए तो महाराज पवनने राजतिलक की रीति-पूरी करके वज्रांग को एक बड़ी सुन्दर ढाल और तलवार प्रदान की और साथ ही बड़े हर्ष के साथ उसे महावीर पद से विभूषित किया। उस समय दर्बार जय जयकार से गूंज उठा, विप्रों की वेद ध्वनि से सारा मंडप गूंजने लगा, अंजना के हर्ष का तो कोई पारावार न था। इस बड़े उत्सव में सारी प्रजा के सामने वज्रांग ने तलवार को कमर से लटकाया और फिर सब को प्रणाम करते हुए अपने आसन पर बैठ गये, इसी अवसर में एकाएक द्वारपाल अन्दर आया और महाराज को हाथ जोड़ कर बोला—

द्वारपाल--राजन्! किष्किन्धा के महाराज सुग्रीव का दूत आप के दर्शनों के लिए बाहर खड़ा है।

किष्किन्धा की ध्वजा उन दिनों मध्य भारत के आकाश में लहरा रही थी, किष्किन्धा के योद्धाओं का लोहा रावण से

प्रतापी राजा मान चुके थे, इस लिए किष्किन्धा के दूत का आगमन सुन कर महाराज ने अन्दर आने की आज्ञा दी। और थोड़ी देर बाद दूत राजा के सन्मुख हाथ जोड़ खड़ा हो कर बोला--

दूत--महाराज पवन देव की जय हो। राजन्! किष्किन्धाधिपति महाराज सुग्रीव आप का कुशल मंगल पूछते हैं और आप के पुत्र हनुमान को महावीर की दुर्लभ पदवी प्राप्त करने पर बधाई देते हैं।

पवन--अहह! दूत मैं तुम्हारे राजा सुग्रीव का बहुत कृतज्ञ हूं वह हमारे परम मित्र हैं, यदि मैं तुम्हारे राजा का कोई उपकार कर सकूं तो बतलाओ मैं उसे अवश्य करूंगा।

दूत--राजन्! आप की दया से महाराज सुग्रीव सब प्रकार से कुशल हैं, परन्तु इस समय वह एक बड़ी विपत्ति में हैं और उसी से छूटने के लिये उन्होंने आप से सहायता मांगी है।

यह कह कर दूत ने अपनी बगल के नीचे से एक कागजों का पुलिंदा निकाला और स्वयं खढ़े खड़े महाराज के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा।

उन्नीसवां परिच्छेद

हनुमान का किष्किन्धा में जाना।

किष्किन्धा से आया हुआ पत्र दर्बार में पढ़ कर सुनाया गया जिसे सुनकर सारी राज-सभा में एक सन्नाटा सा छा गया, पत्र में लिखा था—

"महाराज पवन की जय हो, परमात्मा आप के राज्य को अटल रखे। इस समय किष्किन्धा राज्य बड़े संकट में है, मेरे बड़े भाई बाली ने सारे देश में उपद्रव मचा रखा है, बीसियों कस्बे और गांव लुट चुके हैं, स्त्रियों का सतीत्व बलात छीना जा रहा है, उसके बल और पराक्रम के सामने किसी को ठहरने का साहस नहीं है, प्यारे पवन! तुम और हम बचपन में एकट्ठे खेले हैं, इसी लिये मां जाये भाइयों के समान हैं इस विचार से मैं तुम्हें बड़े दुःख से लिखता हूं कि तुम्हारी भौजाई अर्थात् मेरी धर्म पत्नी तारा को भी वह दुष्ट बलात् हर ले गया है। मेरी आंखे तुम्हारी ओर लगी हैं, इस से अधिक मैं क्या लिखूं। इस समय तुम्हारा जो कर्तव्य है वह करो, मेरी लाज तुम्हारे हाथों में है।

तात्पर्य्य स्पष्ट था, परन्तु सुग्रीव की सहायता के लिए बाली के साथ लड़ना जलती आग में कूदना था, बाली, वह बाली जिस ने रावण से प्रतापी राजा को पकड़ कर उस के सिर से शमादान का काम लिया था उस से लड़ना कोई दिल्लगी न थी। उस के गजाकार डील डौल, और विकाल चेहरे पर अग्नि के समान जलती हुई छोटी छोटी आंखों को देखते ही बड़े बड़े शूरवीरों के कलेजे कांप उठते थे; वह अपनी एक ही भयावनी दृष्टि से शत्रु का आधा बल खेंच लेता था उस के साथ संग्राम के लिये कौन जाए यह एक प्रश्न था. जो महाराज पवन की आंखें प्रत्येक सरदार से पूछ रही थीं। महाराज ने बारी २ सब की ओर देखा, परन्तु सब के सब चुप थे, किसी का साहस न पड़ता था; पर हां एक व्यक्ति था जिस का मुख मंडल तमातमा रहा था, सुग्रीव का पत्र सुन कर उस का चेहरा कानों तक लाल हो उटा था। जब किसी सर्दार ने इस कार्य्य को करने के लिए हाथ न बढ़ाया तो वह अपने स्थान से उठ कर खड़ा हो गया और बिजली की तरह कड़क कर बोलाः—

"शोक है, कि एक बलवान दुर्बलों पर अत्याचार करे, बहु बेटियों पर बलात्कार करे परन्तु आप सब के सब एक दूसरों का मंह देखते बैठे रहें. अहो! धिक्कार है, इन भुजाओं

पर, निस्सन्देह पृथिवी क्षत्रियों से शून्य हो रही है, परन्तु याद रखो जिस जीवन के मोह में पड़े हुए आप सुग्रीव को सहायता से डरते हैं वह जीवन क्षण भंगुर है, आओ मेरे साथ चलो और उस पापी बाली को मारकर पृथिवी का भार हल्का करो अथवा स्वयं प्राण देकर यश को प्राप्त करो। पवन पुत्र हनुमान के रहते कौन है जो अबलाओं पर अत्याचार करे। यह कह कर वज्रांग हनुमान ने पान का बीड़ा अपने मुख में डाला और गुर्ज कन्धे पर रख किष्किन्धा जाने के लिए तैय्यार हो गया"।

सुग्रीव का दर्बार।

"महाबीर! हमारे बालसखा पवन कुशल तो हैं?

हनुमान—हां राजन्! परमात्मा की दया से सब कुशल हैं, अब आप मुझे आज्ञा दें कि बाली के अत्याचार किस उपाय से समाप्त किये जाएं?

सुग्रीव-महाबीर! मैं क्या बतलाऊं, तुम जानते ही हो कि बाली के समान इन दिनों पराक्रमी और बलवान राजा दूसरा नहीं है। बहुत से राजाओं को मैंने पत्र लिखे परन्तु तुम्हारे सिवा शेष सब ने टाल दिया; और सच तो यह है कि इस में उन का दोष भी क्या हैं, पराई आग में कौन कूदता हैं,

अब तुम ही बतलाओ कि कौन सा उपाय किया जाए ?

हनुमान—राजन ! आप घबराएं नहीं जब तक मेरे तन में प्राण हैं, मैं बाली से लड़ूंगा, मैं तुम्हारे लिये; अबलाओं के लिए, तथा निर्बलों के लिए आग में कूदूंगा, यह सेवक केवल आप का इशारा चाहता है और यदि आप यह समझते हैं कि मैं अकेला बाली से पार न पा सकूंगा तो आप मुझे आज्ञा दें, मैं लंकापति रावण के पास अपना दूत भेजता हूं; आज उस के समान संसार में कौन बलि है, जिस ने अयोध्या को छोड़ कर सारे भूमण्डल के राजों को जीता है, इन्द्र से कर लिया है जिस के पुत्र मेघनाद ने कैलाश के समस्त राजाओं को वश में करके अपने हाथ की हथेली पर नचाया है उस रावण को मेरे पिता पवन ने अभी अभी युद्ध में बड़ी सहायता दी है और उस के शत्रु वरुण को परास्त किया है. वह हमारी बात का कभी उल्लंघन नहीं करेगा, उस की सहायता से आप एक बाली क्या बीस बालियों को जड़ मूल से नाश कर सकते हैं।

सुग्रीव ने महावीर की बातको सुनकर उत्तर दिया।

सुग्रीव—प्यारे महावीर ! निस्सन्देह रावण आज संसार का मुकुट है, परन्तु उस से सहायता मांगना ऐसा ही है जैसे चूहे को पकड़ने के लिए सांप को घर पर ले आना।

प्यारे वज्राङ्ग ! रावण से आचार भ्रष्ट व्यभिचारी दुष्ट राजा से मैं सहायता न लूंगा। क्या तुम ने देखा नहीं कि कल्ह ही वह जड़ बुद्धि किसी स्त्री को बलात हर कर आकाश मार्ग से लिए जा रहा था. यदि उस ने बाली को परास्त करके मेरी स्त्री को छुड़ा भी लिया तो भी वह मुझे न लौटा कर स्वयं ही उसको ले जाएगा इस लिए कोई और उपाय············

सुग्रीव अभी अपनी बात भी पूरी न कर पाया था, कि गदाधर नामक उसका चतुर दूत अन्दर आया और भूमि तक झुक कर बोला—

गदाधर—अन्न दाता ! किष्किन्धा के बाग़ीचों में दो नवयुवक बनवासी कल से घूम रहे है। यद्यपि उन का वेश बनवासी मुनियों का सा है परन्तु उनका तेजस्वी मुख मण्डल साफ बतला रहा है. कि यह सरासर धोखा है और वह या तो किसी देश के राजकुमार हैं अथवा बाली के छोड़े हुए जासूस हैं।

सुग्रीव ने उसी समय महावीर को उन राजकुमारों का पता लेने की आज्ञा दी जो तुरन्त ही कन्धे पर गदा रख प्रणाम करके बाहर चले गए।

———

बीसवां परिच्छेद

हनुमान राम मिलाप ।

भाई तुम कौन हो ? कहां से आये हो ? तुम्हारे सुकुमार शरीर इन बीहड़ बनों के योग्य नहीं हैं परन्तु फिर भी तुम इस प्रकार बेसरोसामान घूम रहे हो, जिस से जान पड़ता है कि आप किसी बड़ी विपत्ति में हो ?

राम—हां, तुम्हारा अनुमान ठीक है, परन्तु तुम्हारे चेहरे मोहरे से मालूम होता है कि तुम पवन पुत्र हनुमान हो। वहुत वर्षों की बात है जब हम तुम दोनों बालक थे तो महाराज पवन तुम को मेरे पिता महाराज दशरथ के दरबार में लाए थे, क्या यह ठीक है ?

हनुमान ने राम की ओर सिर से पाओं तक देखा, देखते देखते उस के नेत्रों में आंसु आ गए, प्रेम से शरीर पुलकित हो गया और गद्गद कंठ से "आह ! प्यारे राम" कहता हुआ उन के पाओं पर गिर पड़ा। रामने उसे गले से लगा लिया।

हनुमान ने रामके चरणों की रज अपने शीश पर चढ़ाई और फिर विह्वल होकर बोला—

हनुमान—अयोध्या नाथ ! आज मैं यह क्या देख रहा हूं। जिन के चरणों में संसार के राजाओं के मुकुट लोटते हैं, जिन के द्वारे पर सहस्रों ब्राह्मण प्रति दिन लाखों रुपये दान प्राप्त करते हैं, जिन रघु वंशियों ने अपने भुज बल से त्रिलोकी को विजय किया है उस त्रिलोकी के नाथ राम को आज मैं इस दीन अवस्था में कैसे देखता हूं ?

हे राघव ! तुम्हारी विपत्ति को देख कर मेरा कलेजा फटा जाता है, यदि आप के संकट दूर करने में मेरे प्राण भी जाएं तो मैं अपने प्राण देने को भी तैय्यार हूं।

राम—प्यारे हनुमान ! विधाता के लिखे को कौन मिटा सकता है; विधाता ने केकयी का रूप धारण करके मुझे चौदह वर्ष का बनवास दिया परन्तु इसका मुझे रत्ती भर भी शोक नहीं, हां एक दुःख है जिससे मेरे प्राण सूख रहे हैं। जनक दुलारी जानकी जिसने मेरे लिए राज महल के सुख छोड़े, दिन रात की भूख प्यास और थकान सही, न जाने कहां चली गई, निस्सन्देह उसको कोई राक्षस हर कर ले गया है, उसी की खोज में व्याकुल हुए हुए, हमने सारा वन छान मारा पर्वतों की कंदराएं ढूंढी परन्तु उसका कुछ पता नहीं चलता, आज उसको तालाश में हम यहां आए हैं, कहो तुम ने कहीं उस दुःखिनी को देखा है ?

हनुमान—स्वामिन्! संसार की अधिष्ठात्री देवी जानकी को इन आंखों ने नहीं देखा, हाँ लंकापति रावण थोड़े दिन हुए एक स्त्री को विमान में बैठाए लिये जा रहा था, उस स्त्री की चीखें सुन कर हृदय फटा जाता था, पता नहीं वह कौन थी; उसके एक दो वस्त्र और कुछ आभूषण हमारे पास पड़े हैं जो उसने जान बूझ कर फेंक दिये थे अथवा दैवयोग से गिर पड़े थे। आप महाराज सुग्रीव के पास पधारिये और धीरज धरिये: जब तक इस दास के तन में प्राण हैं वह आप का साथ देगा।

हनुमान राम और लक्ष्मण को साथ ले कर महाराज सुग्रीव की सभा में पहुंचा। सुग्रीव ने बड़े आदर सम्मान से उनका स्वागत किया। सीता के वस्त्रों को देखा तो विश्वास हो गया कि लंकापति रावण ही उसको हर कर ले गया है। दोनों ने एक दूसरे की सहायता करने की प्रतिज्ञा की और इस प्रकार राम और सुग्रीव परस्पर प्रगाढ़ प्रेम में बंध गए।
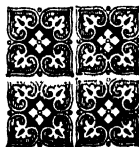
इक्कीसवां परिच्छेद

लंक जाने का विचार।

राम की सहायता से सुग्रीव ने बाली को मार डाला। किष्किन्धा में से बाली के उपद्रव दूर हुए; घर घर मंगलाचार होने लगे। राम ने अपनी प्रतिज्ञा को पूरा कर दिया, अब सुग्रीव का कर्त्तव्य था कि वह भी अपने मित्र के उपकार का बदला चुकाए। उसने अपने सरदारों को बुला कर विचार किया और फिर बाली के पुत्र अंगद हनुमान नल नील और जाम्बवन्त को आज्ञा दी कि सीता का शीघ्र पता लिया जाए।

महाराज सुग्रीव की आज्ञा पाकर बड़े २ सरदार समुद्र तट पर आए उस समय समुद्र में तूफान आया हुआ था। नौकाएं तो क्या बड़े बड़े जहाज़ भी मारे भय से कांप रहे थे। प्रबल अंधेरी की टक्करों से उछलते हुए जलों के तौदे पर्वतों के समान ऊंचे चढ़ कर टुकड़े टुकड़े हो रहे थे, तैरना तो क्या इस भयानक दृश्य को देखने ही से प्राण सूखते जा रहे थे, परन्तु महाराज सुग्रीव की आज्ञा थी, कि आज ही लंका में जाओ। किनारे पर खड़े नल नील अंगद सुग्रीव सब एक दूसरे का मुंह देख रहे थे, परन्तु कौन "हां" करे, चार सौ मील का समुद्र इस तूफान में भुज बल से पार करना मौत को बुलाना था।

जांबवंत ने अपना बुढ़ापा बतला कर पीछा छुड़ाया, नल नील मारे डर के बोलते न थे, अंगद बलवान था, और तैराक भी परन्तु उस के भेजने में डर था कि कहीं लोग यह चर्चा न करें कि सुग्रीव ने भाई का बीज नाश करने का उपाय किया है, अब जानकी का कौन पता लाए।

हनुमान ने जब यह देखा तो उस का मुख स्वाभाविक क्षात्रतेज से तमतमा उठा, वह गुर्ज को वायु मण्डल में। घुमाता हुआ बोला--

भाइयो! किन विचारों में पड़े हो, परोपकार के लिए क्षत्रिय अपने प्राण दे दिया करते हैं, यह परदेशी क्या कहेंगे कि वानरों के देश में हम लुट गए, और फिर स्त्री जाति पर अत्याचार होता देख कर जो क्षत्रिय बैठा मुंह देखता रहे वह तो क्षत्रियों में कलंक ही समझो, उठो और सीता के छुड़ाने में प्राण दे दो, तुम यहां इस किनारे पर मेरी बाट देखो। अंजना का पुत्र इस काम को करेगा।

यह कह कर महावीर हनुमान ने अपने गुर्ज को आकाश में घुमाया और राम के चरणों में गिर पड़ा। राम ने उस को प्यार से गले लगाया और अपने हाथ की अंगूठी देते हुए बोले--

राम--प्यारे महावीर! जाओ अंजना का दूध तुम्हारी

सहायता करे यह अंगूठी महारानी सीता को दिखाना और उन का संदेश ले कर शीघ्र लौटना।

हनुमान ने राम के चरण छूए, खंभ ठोंका और धम्म से समुद्र में कूद कर तूफान में छिप गया।

बाईसवां परिच्छेद

समुद्र पार।

क्षुब्ध समुद्र की उत्ताल तरंगों के साथ युद्ध करता हुआ महावीर बज्रांग आगे बढ़ने लगा। ज्यों ज्यों वह आगे बढ़ता तूफान का वेग भी बढ़ता जाता। शिला के समान चौड़ी छाती के नीचे जल को दबाये दोनों हाथों से पानी को चीरता हुआ वह वीर बड़े मगर मच्छ की तरह निर्भय हो कर जल के साथ खेलने लगा। उछलते हुए जल पर सवार हुआ वह बार बार इस प्रकार नीचे लुड़कता था जैसे पर्वत के बरसाती नाले पत्थरों को नीचे लुड़का देते हैं। उस के चारों ओर नक्र मकर आदि जल जन्तु राक्षसों के समान मुंह खोले घूमते थे, परन्तु प्राणों की परवा न करता हुआ वह वानर अपनी कटार से कइयों के पेट फाड़ता चला गया। इस प्रकार सौ कोस पार करते उस को रात पड़ गई। परन्तु तूफान के साथ अब बादल भी हर हराने लगे। बिजली कड़क कड़क कर समद्र के जलचरों को भयभीत करने लगी और थोड़ी ही देर में समुद्र तल और अंतरिक्ष मंडल जल मय हो गए। मूसला

घोर वर्षा ने प्रलय को महाप्रलय बना दिया। बाणों के समान बौछाड़ की बूंदे वज्रांग के पर्वताकार शरीर को घायल करने लगीं। परन्तु धन्य हो महावीर! ऐसे असह्य दुःख में भी तूने धैर्य्य को नहीं छोड़ा और तीन दिन व तीन रात्रि बिना कुछ खाये रास्ते में आये हुए सामुद्रिक पर्वतों पर सांस लेता चौथे दिन आधी रात रहते लंका के तीर पर जा लगा।

लंका में पचहुंने पर हनुमान ने सारे नगर की परिक्रमा की, और अन्दर जाने के लिए रास्ता ढूंढने लगा। परन्तु ऊंचे ऊंचे कोट जिन्होंने चारों ओर लंका को घेरे हुए थे उसके अंदर जाने में बाधक थे। बल से अन्दर जाने का विचार कर अन्त में वह सिंह द्वार पर आया और निर्भय हो कर ड्यढ़ी के अन्दर चला गया।

अकस्मात् एक भीमाकार मनुष्य को रात के समय अन्दर आते देख द्वारपाल ने तलवार की मुट्ठी पर हाथ रखते हुए कड़क कर कहा--

द्वारपाल-- कौन?

हनुमान --महाराज रावण के परम मित्र महाराज पवन का पुत्र हनुमान।

द्वारपाल--मित्र हो चाहे बन्धु, विना परवाने के कोई मनुष्य रात्रि के समय अन्दर नहीं आ सकता, फाटक से

बाहर हो जाओ, प्रातः काल से पहले तुम अन्दर नहीं आ सकते ।

हनुमान को द्वारपाल के उत्तर से क्रोध चढ़ आया। उस ने गुर्ज की एक ही चोट से उसका कचूमर निकाल दिया, और बाकी सिपाहियों के जो शराब के मद में ऊंघ रहे थे पहुंचने से पहले ही वह तेजी से भागता हुआ अंधेरे में लोप हो गया।

दिन चढ़ते ही उस ने वानर वेश को उतार देना उचित समझा, वह सीधा एक दुकान पर गया जहां उस ने जहाज के मल्लाहों के ढंग की एक पोशाक खरीदी। और उस को पहर कर गली गली बाजार बाजार दुकान २ घूम कर सीता की टोह लेने लगा। लङ्का नगर का पत्ता पत्ता छान मारा, परन्तु जानकी का कहीं पता न मिला, हताश हो कर नगर के बाहर बाग़ीचों में घूमने लगा, एक एक करके सब के सब बाग बग़ीचे छान मारे, सन्ध्या होने लगी, परन्तु सीता कहीं दिखाई न दी। अन्त में मुरझाए हुए दिलसे थक कर एक वृक्ष के नीचे बैठ गया और सीता की चिन्ता में लीन हो गया। कुछ देर सोचने के बाद उस ने उठ कर इधर उधर देखा, और लङ्का के सिपाहियों से आंख बचाता सीधा नदी की ओर चल पड़ा, नदी तटपर अन्धकार छाया हुआ था, शान्त

प्राकृति में सुनील जल तीर के साथ अठकेलियां कर रहा था, हनुमान ने तट पर खड़े होकर दूर तक दृष्टि दौड़ाई सीता, के देखने के लिए उस ने इधर उधर बहुत चक्कर लगाए परन्तु कुछ सफलता न हुई। उसने आकाशको ओर एक निराश दृष्टि से देखा, फिर एक ठण्डी सांस ली और घुटनों के बल परमात्मा के दर्बार में झुक कर बोला —

हे दीना नाथ! हे दीनबन्धु परमात्मन्! तेरे बिना इस समय मेरा कोई नहीं है, हे नाथ! जानकी की खोज करता २ हार गया हूं। इस समय संध्या हो गई है, जानकी एक आर्य्य क्षत्राणी है, सायंकाल को वह नदी तीर पर बैठी अवश्य संध्योपासन कर रही होगी, उस के जीने में संशय हो सकता है परन्तु जीते जागते संध्योपासन के लिए यहां न आई हो, यह बात असंभव है, इसी बात को हृदय में रख कर तेरे भरोसे भगवन मैं यहां आया; परन्तु हा शोक! प्रभो! मुझ अभागे का सारा प्रयत्न निष्फल गया। हे घट घट की जानने वाले! मेरी लाज तेरे हाथ है, सुग्रीव को मैं क्या मुख दिखलाऊंगा। राम के उपकार का बदला सुग्रीव किस प्रकार उतारेगा, भगवान राम क्या कहेंगे, किष्किन्धा में उन का सर्वस्व लुट गया! हे दीना नाथ! मेरी जाति की और मेरे देश की लज्जा तेरे हाथ है......

......इस प्रकार प्रार्थना करते उस के नेत्रों से जल बहने

लगा और वह उसी आंसुओं के प्रवाह में डूब कर अचेत सा हो गया, कुछ देर बाद जब उस का मन कुछ हल्का हुआ तो वह फिर साहस करके उठा और नदी के तीर तीर चलने लगा. कई मील अन्धकार में चलते चलते एकाएक उस के कानों में एक मधुर स्वर का संपात हुआ। स्वर क्या था बीणा की झंकार थी. जिसे सुन कर ही मानो भूमि आकाश नदी नाले बन उपबन सब के सब मस्त मौन खड़े थे। उस ने अपने कानों को उधर लगा दिया. अब अक्षर स्पष्ट सुनाई देने लगे--ओ३म् शन्नो देवी रभिष्टये आपो भवन्तु पीतये शंयो रभिस्त्रवंतु नः ......

अंजना सुत हनुमान धड़कते हुए हृदय से दबे पांओं उधर ही चल निकला. और थोड़ी देर जा कर उस ने देखा कि महारानी सीता सन्ध्योपासना में मग्न है। सीता के वेष भूषण रूप और सुन्दरता को देख कर उस को निश्चय हो गया, कि इस स्त्री के सीता होने में कोई सन्देह ही नहीं है। वह चुप चाप उस बृक्ष पर चढ़ गया जिस के नीचे सीता अपने प्रभु के ध्यान में लीन हो रही थी। जब जानकी सन्ध्योपासना से निबृत्त हो चुकी तो उस ने इस अवसर को अपने प्रगट करने के लिए उचित समझा और वह तुरन्त नीचे उतर कर भगवती सीता के पाओं पर गिर पड़ा।

जानकी ने उसका मल्लाहों का सा वेश देख कर आश्चर्य्य से पूछा--

भाई! तुम कौन हो ? और इस अभागिन से क्या चाहते हो ?

हनुमान--माता ! यह दास अयोध्यापति राम का सेवक है, और उन्हीं की आज्ञा से आप को खोज करता यहां तक पहुंचा है, परमात्मा का सौ बार धन्यवाद है जिस ने मेरे प्रयत्न को सफल किया।

सीता ने हनुमान के मुख से यह बात सुनी तो एक संदेह भरी दृष्टि से उस की ओर देखा और फिर अपने आप को सम्भालती हुई बोली—

सीता—चतुर दूत! तुम राम के भेजे हुए यहां आए हो, इस बात पर मुझे किस प्रकार विश्वास हो ? जब से लंकेश रावण मुझे पञ्चबटि से हर कर लाया है, दिन रात उस के गुप्त चर मेरे पीछे लगे रहते हैं। रावण को दुष्ट वासनाओं को पूरा करने के लिए अनेक प्रकार के वेश रूप आकार और भाषाएं बोल कर अनेक जाल बिछाते हैं, ऐसी अवस्था में मैं तुम पर क्यों कर विश्वास करू, और फिर तुम्हारी यह लंका के मल्लाहों की सी पोशाक तो साफ बतला रही है, कि तुम भी उन्हीं में से एक हो।

हनुमान—माता! रावण अनेक प्रकार की युक्तियों से

अपना प्रयोजन सिद्ध करने में चतुर है, यह मैं जानता हूं, परन्तु इस दास पर जो कि भगवान राम का बाल सखा है सन्देह न करें, मैंने अंजना का दूध पिया है, इस लिये मैं जानता हूं कि एक पतिव्रता को धोखा देना कितना पाप है। मैं आर्य्य हूं, आर्य्य लोग कभी विश्वास घात नहीं करते। महाराज राम, लक्ष्मण और किष्किन्धा नरेश सुग्रीव अपनी सेनाओं सहित समुद्र पार मेरी बाट देख रहे हैं। मेरे वहां पहुंचते ही वानरों की सेना इस स्वर्ण की लंका पुरी को जलाकर राखकर डालेगी ईंट से ईंट बजा देगी, राक्षसों का बीज नाश होगा और दुष्ट रावण अपने दसों मंत्रियों सहित जिन को कि वह अपने सिर कहा करता है, और जिन के मस्तिष्क प्रति क्षण संसार को लूटने मारने की युक्तियां सोचते रहते हैं; मारे जाएंगे। भगवान राम ने समुद्र के तीर पर खड़े हो कर यह सौगन्ध खाई है, कि सीता का हरने वाला अब इस संसार में नहीं रह सकता। आप धीरज धरें और इस अंगूठी को देख कर जो कि राम ने अपनी उंगली से उतार कर मुझे दी है मुझ पर विश्वास करें। यह कह कर हनुमान ने अंगूठी को सीता की हथेली पर रख दिया।

सीता ने अंगूठी देखी तो उस के सुनील नयन जल से भर गए। उस ने अंगूठी को चूमा, हृदय से लगाया और फिर सीस पर चढ़ा कर हनुमान से राम और लक्ष्मण का सारा वृत्तान्त पूछा।

—— ० ——

तेईसवां परिच्छेद

भगवती जानकी को धैर्य्य देकर हनुमान बसंत बाग में पहुंचा। भूख और थकान से उसका शरीर निढाल हो रहा था। पहरेदारों से आँख बचाता हुआ वह पिछली ओर की दीवार फांद कर बाग के अंदर चला गया और ठंडे जल की कूल के तट पर एक सफेद शिला पर बैठा बैठा अपने कर्तव्य का विचार करने लगा। कई घंटे तक वहां बैठकर उसने जो करना था सोच लिया, और फिर सूर्य्योदय की प्रतीक्षा में वहीं पर सो गया।

प्रातः काल होते ही वह स्नान संध्यादि से निवृत्त होकर बाग में घूमने लगा। बाग क्या था इन्द्र का नंदन बन भी उसके सामने तुच्छ था। रंग बिरंगी फूलों के पौधे अपनी सुहावनी सुगन्धि से मरे हुओं में भी जीवन डाल रहे थे। संसार भर का कोई फल और मेवा न था जो उस बाग में उसने न देखा। स्वच्छ और निर्मल जलों वाली कूलें सरोवरों को भर रही थीं नाना प्रकार को बोलियां बोलने वाले पक्षि

पेड़ों पर कलख कर रहे थे। महावीर हनुमान ने उन फलों से अपनी भूख की अग्नि को शान्त किया। जब तृप्त होगया तो अपने सोचे हुए विचार को कार्य्य रूप में परिणत करने लगा। किसी बहाने से उसने रावण को दुख देना था, और यह बाग इस काम के लिए उसका साधन था। सबसे पहले उसने फूलों के गमलों को भूमि पर दे मारा, फिर वृक्षों की ओर लपका, जिस वृक्ष को देखता हाथी के शुण्ड के समान अपनी भुजाओं से एक ही झटके के साथ उखाड़ डालता उसके क्रोध का उस समय कोई ठिकाना न था, बसन्त बाग़ में घूमता हुआ वह बानरराज आंधी के समान पेड़ों को गिरा रहा था कई घंटे तक उसने यह उत्पात जारी रखा जब कि बाग़ के माली एक ने उसको देख लिया। वह दौड़ता हुआ फाटक के संतरियों के पास गया और बाग की दुर्दशा का वर्णन किया। हनुमान जो पहले ही से तैयार था, सिपाहियों को दूर ही से देखकर उनकी ओर दौड़ा और अपने बड़े गुर्ज से मार मार कर उनको सदा के लिए सुला दिया। रावण को इसका समाचार मिला तो अपने पुत्र अक्षय और मत्स्य को एक बड़ी सेना देकर भेजा। दोनों ओर से रण ठन गया एक ओर अकेला वज्रांग और दूसरी ओर सैकड़ों राक्षस उस पर शस्त्रों की मार करने लगे; पर वाह महावीर! उसने सहसा एक पेड़ को उखाड़ा और मूसल की तरह घुमाता हुआ उन पर टूट पड़ा, बीसियों मारे

गए. बीसियों घायल हुए; रावण के दोनों बेटे अक्षय और मत्स्य भी मर गए और शेष सब के सब चीख़ते चिल्लाते रावण की सभा में दौड़े गये। रावण ने जब यह दशा सुनी तो क्रोध से दांत पीसते हुए मेघनाद को भेजा।

मेघनाद को हराना कोई सामान्य बात न थी संसार उसके भुजबल को जानता था हनुमान भी भली भांति समझता था।

मेघनाद ने आते ही हनुमान को ललकारा और गुर्ज को हाथ से रख देने की आज्ञा दी। हनुमान के मन का मनोरथ पूरा हुआ, क्योंकि इस समय न लड़ने ही से उसका कार्य्य सिद्ध हो सकता था उसने गुर्ज को हाथ से रख दिया। चारों ओर से सिपाही उसको घेरा डाले खड़े थे, उन्हों ने हल्ला करके उसको पकड़ लिया और मेघनाद ने ब्रह्मपाश से उसके सारे शरीर को जकड़ दिया और वहां से कारागार में भेज दिया।
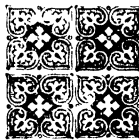
चौबीसवां परिच्छेद ।

लंका दहन ।

रात भर महावीर हनुमान रावण के उस कारागार में रहा जहां देश देश के सैकड़ों राजे राज कुमार सेनापति आदि शाही कैदी बना कर रखे हुए थे। उसने अंदर जाकर देखा तो क्रोध से उसके नेत्र लाल हो गए। कारागार में सड़ते हुए इतने निर्दोष राजकुमार रावण के अत्याचारों का जीवित जागृत नमूना था। वह रात उसने जागते हुए काटी, कई एक कैदियों से वह गुप्त रीति से मिला और न जाने क्या उनके साथ मन्त्रणा करके वह बड़ी भोर अपने कमरे में जाकर शान्ति से लेट गया।

प्रातःकाल होते ही बड़े बड़े भीमाकार विकाल मूर्ति राक्षसों में घिरा हुआ वह रावण के सन्मुख खड़ा किया गया।

रावण ने जो राज्य मद में अंधा हुआ हुआ संसार को

तुच्छ समझता था हनुमान को देखा तो एक घृणित हंसी हंसता हुआ बोला——

"हनुमान"

हनुमान—राजन् !

रावण तुम जानते हो कि तुम किसके सामने खड़े हो?

हनुमान—हां जानता हूं, थोड़े दिन हुए वरुण से भय भीत हुआ हुआ जो मनुष्य मेरे पिता की शरण में आया, जिस के सिर से बाली ने शमादान का काम लिया, जो अयोध्या से कर लेने गया परन्तु भय के मारे नगर के फाटक के अंदर न घुस सका, जिसकी बलवान भुजाओं से राजा बलि के गहने तक न उठाए जा सके. जो जानकी स्वयम्बर में धनुष तोड़ने का साहस तो न कर सका परन्तु चोरों की तरह अकेली उसे बन से उठा लाया, जो अपने सिर से काम न लेकर दश मन्त्रियों के सिरों को अपने सिर समझता है, और जिसके सिर पर विषय वासना का गधा प्रतिक्षण सवार रहता है उस ब्रह्म राक्षस रावण के सामने मैं खड़ा हूं ।

रावण—पवन का पुत्र होने से मुझको तुम पर दया आई थी, परन्तु तुलसी में भांग उत्पन्न हो गई, अच्छे कुल में तुम कलंक उत्पन्न हुए हो, बताओ तुम किस लिए लंका में आए हो. मालूम होता है तुम्हारी मौत ही तुमको यहां घेर लाई है ।

हनुमान महाराज सुग्रीव की आज्ञा से जानकी का पता लेने आया था, तुम्हारा सिर काटने की मुझे आज्ञा न थी, नहीं तो अंजना का पुत्र बिना तुम्हारे प्राण लिए यहां से कभी न लौटता परन्तु कोई बात नहीं, पर स्त्री को हरण करने वाला आज नहीं तो थोड़े दिन पश्चात् मारा जायेगा मैं अपना कार्य्य कर चुका, तुम्हारे अत्याचारों का समाचार राम के कानों में पहुंच चुका जो समुद्र पार लाखों योद्धाओं की सेना के साथ तुम्हारे मारने का उपाय कर रहे हैं, अब तुम अपना काम करो मारे चाहे छोड़ो।

रावण अब और न सह सका हनुमान की जली कटी बातों से उसके धीरज का प्याला छलकने लगा था झुंझला कर बोला निस्सन्देह मनुष्य हो कर इस ने वानरों की सी हरकत की है।

शूलिक ! मैं चाहता था, कि इसको सूली पर चढ़ाकर मार डालूं, परन्तु इसकी उद्दण्डता इसको अधिक दण्ड का पात्र समझती है, ले जाओ इस बानर को और एक लम्बी पूंछ लगाकर इसे सारे नगर में घुमाओ, और फिर पूंछ पर रुई और तेल लगा कर इसे जीते जी जला डालो।

लंकापति रावण के इशारे की देर थी, उसी समय सिपाहियों ने एक लम्बी पूंछ उसको लगा दी तेल और रुई

से उसको सजाया गया; और नगर में घुमाने के लिये अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित सैकड़ों सिपाही उसको ले चले। इस विचित्र दृश्य को देखने के लिए लंका के अंदर एक कोलाहल मच गया, बाज़ारों में मनुष्यों के ठट के ठट लग गये मकानों की छत्तों पर स्त्रियों की भीड़ लग गई, धीरे धीरे हनुमान नगर में घूमने लगा, लोग उसे देखते तो खिल्लियां करते लड़के हूं करते हुए पीछे पीछे भागते सारे नगर में केवल एक मनुष्य ऐसा निकला, जो हनुमान को देखकर रो उठा और जिसने रावण की इस मूर्खता पर प्रत्यक्ष रूप से शोक प्रकट किया।

नगर का चक्कर लगा कर जब वापस आए तो हनुमान को उस खुले चौक में खड़ा किया गया जो उसको आग में जला डालने के लिए नियत किया गया था यहां पर मनुष्यों की भीड़ का वार पार न था, सहस्त्रों मनुष्य इस विचित्र दृश्य को देखने के लिए एक दूसरे पर गिर रहे थे, रावण अपने मंत्रियों सहित एक ऊंचे और विशाल तख्त पर बैठा हंस रहा था, परन्तु धन्य हो हनुमान ! उस समय भी उस के मुख मण्डल पर उदासीनता की रेखा न थी. वह इस सारे दुख और लज्जास्पद दृश्य को एक वीर जरनैल की तरह मुस्करा कर देखरहा था।

सायंकाल हो चला था, सूर्य देव लाल मुंह किये इस

सीता ने रावण के सामने यह बचन कहे हैं कि "जानकी राम के सिवा किसी से प्रेम नहीं कर सकती, रावण! जिन तेरी भुजाओं ने मेरे अंगों को स्पर्श किया है उन्हें राम अपने हाथ से काटेंगे हे राघव! आओ और अपनी प्रिया के कहे हुए शब्दों को सच्चा कर दिखाओ "सीता राम के साथ जायेगी अथवा वहीं पर प्राण दे देगी"।

हनुमान ने सीता का यह सन्देश सुन उसके चरणों को छुआ, और इससे पहले कि लंकेश की सेना जो उसी ओर आ रही थी उसको पकड़ सकती उसने पूंछ को समुद्र में डुबाया और फिर जल में छलांग मार कर तैरने लगा।

बड़े महल आग उगलने लगे, धूएं से भूमि आकाश भर गया हनुमान ने घरों के अंदर जा जाकर महल माड़ियां कोट कंगूरे जला डाले, हां केवल एक घर बच गया, और वह रावण के भाई विभीषण का था। शेष सारी सोने की लंका आग की लंका बन गई। इस प्रकार अपने अपमान का बदला लेकर हनुमान दौड़ता हुआ अशोक वाटिका में पहुंचा जहां सीता उन लंका की स्त्रियों को धीरज दे रही थी जो प्राणों के भय से उसकी शरण में आगई थीं।

हनुमान ने जानकी के चरणों पर मस्तक निवाया और हाथ जोड़ कर बोला—

हनुमान—माता! महाराज राम के प्रताप और विभीषण की सहायता से इस राक्षस नगरी को भस्मीभूत कर चुका हूं अब तुम निश्शंक होकर मेरे कंधे पर बैठो, दो दिन बाद आप भगवान राम के पास पहुंच जाओगी।

हनुमान की वीरता रामभक्ति और साहस को देखकर जानकी का हृदय गद्गद प्रसन्न हो गया नेत्रों में आंसु छलकने लगे और उसने हनुमान की पीठ पर थपकी देते हुए कहा—

सीता—महावीर! तुम्हारी वीरता पर कुछ सन्देह नहीं है, धन्य है अंजना जिसकी कुक्षि से तुम्हारे जैसे बलवान बालक उत्पन्न हुए हैं, परन्तु राम को मेरी ओर से कहो क

सीता ने रावण के सामने यह बचन कहे हैं कि "जानकी राम के सिवा किसी से प्रेम नहीं कर सकती, रावण ! जिन तेरी भुजाओं ने मेरे अंगों को स्पर्श किया है उन्हें राम अपने हाथ से काटेंगे हे राघव ! आओ और अपनी प्रिया के कहे हुए शब्दों को सच्चा कर दिखाओ "सीता राम के साथ जायेगी अथवा यहीं पर प्राण दे देगी "।

हनुमान ने सीता का यह सन्देश सुन उसके चरणों को छुआ, और इससे पहले कि लंकेश की सेना जो उसी ओर आ रही थी उसको पकड़ सकती उसने पूंछ को समुद्र में डुबाया और फिर जल में छलांग मार कर तैरने लगा।
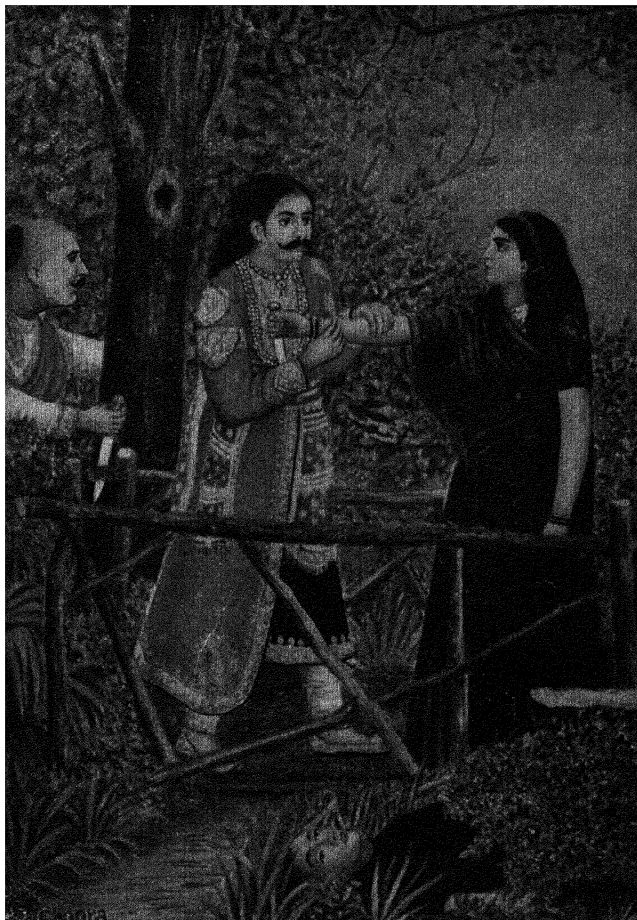
इससे आगे यदि एक भी शब्द तेरे मुख से निकला तो याद रख यह कटार और तेरा सिर होगा।

[पृष्ठ नं० ७२]

पच्चीसवां परिच्छेद

रामेश्वर का पुल ।

हनुमान के समुद्र में कूदने का समाचार रावण ने सुना तो दाँत पीस कर रह गया, तुरन्त मल्लाहों को आज्ञा दी कि जीते जी इस बानर को पकड़ो। बड़े बड़े जहाज और नौकाएं उसके पीछे छोड़ी गईं परन्तु कहाँ? पवनपुत्र पवन के वेग से तैरता गहरी डुबकियाँ लगाता रावण के समुद्र की सीमा से पार निकल गया और तीसरे दिन किनारे पर जा लगा। हनुमान के कुशलपूर्वक सीता का पता लेकर आने से बानर सेना में शंख ढोल नफीरियाँ और अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे आकाश में ध्वजाएं फहराने लगीं। हनुमान ने राम के चरणों में सीस निवाया और फिर हाथ जोड़कर बोलाः—

हनुमान—भगवन्! आपका सन्देश मैंने जानकी को दे दिया, अशोक वाटिका में बैठी वह आपके वियोग में रो रही है दुष्ट रावण उसका सतीत्व नष्ट करने पर तुला हुआ है, मैं सीता के सम्बन्ध में इतनी ही प्रार्थना करूंगा कि जितनी

जल्दी हो सके समुद्र पर पुल बाँधकर लंका को घेर लें, नहीं तो रोती हुई सीता के आँसुओं का प्रवाह यदि समुद्र के साथ मिल गया तो फिर इसका पार करना कठिन होगा।

राम ने हनुमान को प्यार से गले लगाया और बोलेः-

राम—प्यारे महावीर तुम मुझको भरत के समान प्यारे हो, भरत के रहते जिस प्रकार मुझे संसार में किसी का भय नहीं है इसी प्रकार तुम्हारी सहायता से मैं रावण को उसके कर्म्मों का फल दूंगा, रावण अब मरा हुआ है तीन लोक में उसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं है।

इस प्रकार कुशल मंगल पूछने के पश्चात् समुद्र पर पुल बाँधने का निश्चय किया गया। नल और नील ने जो कि विश्व कर्म्मा के समान कला कौशल में प्रवीण थे पत्थरों के जोड़ने का मसाला तैय्यार किया, और रिक्ष तथा वानरों की सेना को पत्थर लाने की आज्ञा दे दी गई। देखते देखते करोड़ों पत्थर समुद्र तट पर दिखाई देने लगे असंख्य बानर और रिक्ष सिपाही पर्वतों को तोड़ तोड़ कर नीचे लुढ़काने लगे। लाखों हाथ उनको उठा उठाकर समुद्र के किनारे फैंकते दिखाई देने लगे, जब निकटवर्ती पत्थर समाप्त हो गए तो दूर दूर के पहाड़ों पर हल्ला बोल दिया गया, थोड़े दिनों के अंदर जहाँ पर्वत दिखाई देते थे पटपटे मैदान बन गए और समुद्र का किनारा हिमा-

लय पहाड़ दिखाई देने लगा। जब पुल की सामग्री इकट्ठी हो गई तो नल नील अपने अद्भुत मसालों से पत्थर जोड़ जोड़कर समुद्र में तैराने लगे, पत्थरों को तैरते देखकर बड़े २ चतुर कारीगर भी मुंह में अंगुलियाँ दबाये नल नील की प्रशंसा करने लगे चारसौ मील पार बैठे रावण का कलेजा हिल गया, इस प्रकार रात दिन के अनथक परिश्रम से एक मास में पुल तैय्यार हो गया। पुल को देखकर राम के आनन्द का पारावार न था बानरों की कारीगरी की धूम सारे सँसार में मच गई। इस बड़े पुल की समाप्ति पर राम ने समस्त बनवासियों ऋषि मुनियों और ब्राह्मणों को बुलाकर एक महान् यज्ञ किया और स्मारक पत्थर रख दिया जो कि आज तक सेतु बन्ध रामेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है और हिन्दु मात्र उस पत्थर महाराज राम के अपने हाथ से रखे हुए उस पत्थर को उन्हीं की मूर्ति समझ कर पूजन करते हैं।

सागर पार।

वायु में लहराती हुई ध्वजाओं की छाया में, शंख ढोल नक्कारे धौंसे नरसिंहे तथा अन्य बाजों की घनघोर में, तलवार तोमर मुद्गर पटहा धनुष बाण और बर्छियों आदि शस्त्रों की झंकार में, लाखों बानरों तथा अछूत सिपाहियों के जयकारो में,

राम की सेना पुल पर से होती हुई सागरपार पहुंच गई। चारों ओर से लंका को घेर लिया गया। जो दृश्य इससे पहले संसार के स्वप्न में भी न आ सकता था आज लोगों ने उसे अपनी आँखों देखा। जिस रावण से तीनों लोक काँपते थे अयोध्या के दो राजकुमारों ने उसके मस्तक पर पाँव रख दिया। इस समय मीलों तक सैनिकों के कैम्प फैले हुए दिखाई देते थे। जिधर देखो लाल कुड़ती और लाल जाँघिये वाले सिपाही दिखाई देते थे दूर से देखने वाले मनुष्य को ऐसा जान पड़ता था मानों सेना रूप रक्त समुद्र के अन्दर लंका डूब रही है। देखते ही देखते बानर सेना के मोरचे बन गये जब युद्ध की सब सामग्री यथा स्थान रख दी गई तो राम की सम्मति से बालि के पुत्र अंगद को दूत बनाकर लंकापति रावण के पास भेज दिया गया।

अंगद रावण के दर्बार में पहुंचा तो उसे बड़े सत्कार के साथ सुनहरी कुरसी पर बैठाया गया। सब प्रकार का कुशल मंगल पूछने के पश्चात् रावण ने मन्त्रियों को आज्ञा दी, कि बाली के पुत्र अंगद को हीरे मोती स्वर्ण तथा और देश देशान्तरों के उपहार दिये जाएं, परन्तु अंगद सिर हिलाता हुआ बोला—

अंगद—लंकापति रावण की जय हो, मैं इस समय

किसी निजी काम के लिये नहीं आया, प्रत्युत दूत रूप से आप के चरणों में उपस्थित हुआ हूं, कार्य्य पूरा हुए बिना दूत को किसी उपहार के लेने का अधिकार नही है, इस लिए आशा है महाराज मुझे क्षमा करेंगे।

रावण--सत्य है, तो आप किस के दूत बन कर किस कार्य्य के लिए आए हैं ?

अंगद—महाराज! पंचवटी में से आप अयोध्या नाथ राम की स्त्री जानकी को हर कर ले आए हैं, यह काम धर्म के नाते आप ने बहुत ही बुरा किया है, राजाओं के लिए पराई स्त्रियाँ कन्याओं के तुल्य होती हैं, और फिर यह तो आर्य्य कुल अवतंस, सूर्य्य वंश के मणि परम प्रतापी महाराज राम की स्त्री है, इस लिए राम की आज्ञा से मैं आप को कहता हूं कि सीता को आगे कर अपने दोनों हाथों को जोड़ कर गले में पल्ला डाल और दाँतों तले तृण दबा कर राम से क्षमा माँगिए नहीं तो सूर्य्य वंशी राम और लक्ष्मण के अग्नि रूप बाणों से दग्ध होने को तैय्यार हो जाइये।

रावण ने अंगद के यह वचन सुने तो बड़े जोर से अट्टहास किया और घृणा से देखता हुआ बोला--

रावण—अंगद! विष से बुझे हुए बाणों के समान तेरे शब्दों को सुन कर उचित तो यही था कि इसी समय तेरी

जिह्वा नोच ली जाती परन्तु दूत होने से मैं तुम्हें क्षमा करता हूं। अरे मूर्ख! जिस राम ने तेरे निर्दोष पिता की हत्या कर डाली उस से बदला लेने का तो यही अवसर था, परन्तु तुझ से कुल कलंक नपुंसकों में यह सामर्थ्य कहाँ, जा जाकर राम और सुग्रीव से कह दे कि रावण की बहन का अपमान करने वाला जीता नहीं रह सकता। सीता एक रत्न है वह राजाओं के मुकुट की शोभा है, बनवासियों को रत्न शोभा नहीं देते।

अंगद— राजन्! कामान्ध होने से तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो गई है, इस कारण तुम मूर्खों के समान अग्नि में हाथ डालना चाहते हो। राम को साधारण मनुष्य न जानो, उन का क्रोध तुम्हारे कुल को क्षय कर देगा आर्य्यों के साथ विरोध करना मृत्यु को बुलाना है।

बहुत समझाने पर भी रावण ने अंगद की न मानी तो विभीषण अपने आसन से उठ कर बोला—

विभीषण—राजन्! यद्यपि इस समय लंका से बढ़ कर कोई शक्ति शाली साम्राज्य नहीं है, परन्तु एक बनवासी राज कुमार की, और विशेषतः उस की अनुपस्थिति में स्त्री को हर कर चोरी से ले आना, सारी लंका की निंदा का कारण है, इस में कोई वीरता नहीं और न ही धर्म शास्त्र के अनुकूल है, इस लिए मेरी भी यही सम्मति है कि राम से क्षमा मांगो

और सीता को उन के यहाँ भिजवा दो, युद्ध में लाखों मनुष्यों का रक्तपात न होने दो इसी में भलाई है।

रावण को विभीषण के वचनों से बहुत क्रोध हुआ वह उस का तिरस्कार करता हुआ बोला—

मूर्ख! भाई होने से तुझे प्राण दण्ड नहीं देता, जान जाएगी परन्तु जानकी नहीं जाएगी, जाओ तुम भी शत्रुओं के साथ मिल जाओ, हनुमान के साथ मिल कर तुम ने कारागार को तुड़वा डाला सैकड़ों कैदियों को स्वतन्त्र कर दिया, सेना और सिपाहियों में राजविद्रोह फैला दिया और लंका को जला डाला। निकल जाओ मेरे राज्य से मैं अपने बल के भरोसे बानरों ऋक्षों सहित राम और लक्ष्मण के सिर काटूंगा और अपनी बहन के नाक काटने का प्रतिकार लूंगा।

यह कह कर रावण अपने आसन से उठा और गर्दन से पकड़ कर विभीषण को बाहर निकाल दिया। अंगद भी उस के पीछे पीछे बाहर निकल गया।

———

युद्ध
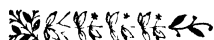
दूसरे दिन बड़ी भोर ही दोनों ओर की सेनाएं आमने सामने खड़ी थीं। घोड़ों की हिन हिनाहट शस्त्रों की झंकार रथों का चमक और लाखों मनुष्यों के जयकारों से आकाश गूंज उठा था एक ओर लाल और दूसरी ओर काली ध्वजाएं वायु में लहरा रही थी। काली बर्दियां पहरे गजाकार राक्षस सैनिक छोटे छोटे परन्तु पवन के समान चञ्चल वानरों को देख देख कर दांत कट कटाते थे, रावण के बड़े बड़े सर्दार अपनी सेना की देख भाल में घोड़ों को कुदाते हुए चारों ओर भाग रहे थे। इधर नल नील अंगद सुग्रीव जांबवंत और पवन पुत्र हनुमान सारी सेना को उभार रहे थे। जब दोनों ओर की सेनाएं सज गईं तो युद्ध का शंख पूरा गया, और साथ ही दोनों सेनाएं पूरे बल से इस प्रकार टकरा गईं जैसे बन्ध टूट जाने से दो नदियाँ टकरा जातीं हैं। राक्षस आकार और

बल में बढ़े चढ़े थे परन्तु एक एक राक्षस को दस दस बानर चिमट गये घमासान का रण ठन गया दोनों ओर के जोश का वारपार न था, परन्तु इस भयानक युद्ध में एक मनुष्य की फुर्ति साहस और पराक्रम देखने योग्य था और वह अंजना का पुत्र महावीर वज्रांग था। विजली की चमक की तरह काली घटा के समान राक्षसों की सेना में वह चारों ओर गर्जता कड़कता और फाड़ता दिखाई देता था। उसने अपने भारी गुर्ज की चोटों से सैकड़ों राक्षसों के भेजे निकाल डाले। जिस ओर देख कर वह हुंकार मारता गीदड़ों के समान राक्षस सेना में भागड़ पड़ जाती बड़े बड़े सेनापति उसके हाथों मारे गये। रण भूमि में लहु की नदी बह गई उस में राक्षसों और बानरों के सिर धड़ टाँगे और भुजाएं मगर मच्छों के समान बहने लगे। इस प्रकार ७ दिन और ७ रातें निरंतर घोर युद्ध होता रहा और विभीषण की सम्मति तथा भगवान के कराल बाणों और अंजना पुत्र हनुमान के गुर्ज ने रावण की सेना के लाखों योद्धाओं को भूमि पर सुला दिया अन्त में सातवें दिन रावण ने क्रोध से अपने प्यारे पुत्र मेघनाद को जिसने अपनी भुजाओं से इन्द्र लोक को जीता था राम के मारने के लिए भेजा। मेघनाद के युद्ध क्षेत्र में आते ही राक्षसी सेना की काली पताकाएं आकाश में लहराने लगीं। सिंहनाद करते

हुए राक्षस आँधी के समान बानरों पर टूट पड़े। मेघनाद मेघों के समान बाणों की वृष्टि करता हुआ बानरों को भूमि पर गिराने लगा।

इधर राम और लक्ष्मण भी विष से बुझे हुए बाणों से राक्षसों को मार २ कर यमलोक में भेजने लगे नल नील अंगद हनुमान चारों ओर से अपनी समुद्र के समान सेनाओं को लेकर राक्षसों का विनाश करने लगे दोनों ओर से घोर युद्ध होने लगा क्षण क्षण में सैकड़ों सिर कट कर ओलों की तरह गिरने लगे युद्ध क्षेत्र मारो पकड़ो और हाय हाय की ध्वनि से भर गया।

दोपहर तक युद्ध इसी भीषण अवस्था में रहा, लहु की नदी बह निकली जिस में मगर मच्छों की तरह हाथ पांओं सिर धड़ ढालें मुकुट बहते हुए दिखाई देने लगे। लक्ष्मण के बाण राक्षसों को व्याकुल कर रहे थे, शेषनाग के समान उस के गर्म फुंकारे असुरों को भयभीत कर रहे थे, उस की मार को न सहती हुई रावण की सेना अलग अलग हो गई और अन्त में चीखती चिल्लाती युद्ध क्षेत्र से भाग उठी। मेघनाद ने यह देखा तो विमान पर सवार हो दूर आकाश में चढ़ गया और ऊपर से गोले मार मार कर बानर सेना का संहार करने लगा जिधर देखो जहां देखो गोलों के फटने से सहस्रों बानर रुई

की तरह उड़ते दिखाई देते थे। अपनी सेना की ऐसी दुर्दशा देख कर राम ने अपने बड़े धनुष को सम्हाला और तीक्ष्ण बाणों से मेघनाद को विमान सहित नीचे गिरा दिया। अकस्मात् गिरने से मेघनाद को बुरी तरह चोट लगी। परन्तु उसने अपने आप को सम्हाला, और छेड़े हुए विषधर सर्प के समान महादेव की दी हुई शक्ति को लक्ष्मण पर छोड़ा। इस समय संध्या हो चुकी थी दोनों सेनाएं घमसान का युद्ध कर रही थीं। वह शक्ति बिजली के समान चमकती हुई वीर लक्ष्मण के कलेजे में घुस गई और वह मूर्छा खा कर भूमि पर गिर पड़ा लक्ष्मण को गिरते देख कर राम की सेना में हाहाकार मच गया। युद्ध बन्द करने का शंख पूर दिया गया। सुग्रीव अङ्गद नल नील रोने लगे। हनुमान पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। राम का मस्तक चक्कर खा गया और वह भाई का सिर गोदी में रख कर विलाप करने लगे।

सताईसवां परिच्छेद

हाय लक्ष्मण ! हा विधाता ! तूने मेरा सर्वस्व नाश कर दिया ! हे वीर। उठ, युद्ध से मुंह मोड़ना क्षत्रियों का धर्म नहीं। हा ! इस बर्छी ने सूर्य्य कुल का नाश कर डाला, अब मैं अपनी माता सुमित्रा को क्या मुख दिखलाऊंगा सीता और लक्ष्मण के बिना अब क्या मुंह लेकर अयोध्या को जाऊंगा। हे परमात्मन् ! लक्ष्मण के स्थान में तूने मेरे प्राण ले लिए होते।

लक्ष्मण के सिर को गोद में लिए भगवान् राम इस प्रकार विलाप कर रहे थे कि विभीषण ने उन को धीरज देते हुए कहा।

विभीषण—हे भगवन् ! युद्ध क्षेत्र में गिरे हुए प्राणि पर क्षत्रिय लोग शोक नहीं किया करते, आप तो सूर्य्य वंश के मणि, मर्य्यादा पुरुषोत्तम हैं, इस लिए शोक और विलाप को छोड़ कर लक्ष्मण के बचाने का उपाय कीजिए। लङ्का में सुषेण नामक एक बड़े वैद्य हैं. इस युद्ध में शत्रु और मित्र दोनों पक्षों

के घायल वीरों की चिकित्सा करने का उन्होंने निश्चय किया हुआ है. यदि हम में से कोई वीर इस समय उस तक पहुंच सके तो लक्ष्मण अवश्यमेव बच सकते हैं।

हनुमान ने जो अब तक शोक सागर में डूबा हुआ चुप चाप नीचे मुख किए बैठा था, विभीषण के यह बचन सुने तो खंभ ठोक कर खड़ा हो गया और अपने भारी गुर्ज को आकाश में घुमाता हुआ बोला–

हनुमान—भगवन् ! आज्ञा कीजिए, लक्ष्मण के लिए मैं अपने प्राण दे सकता हूं। अञ्जना का पुत्र यदि सुषेण को यहां पकड़ कर न ले आवे तो आप के चरणों की सोगन्ध है जो वह फिर कभी युद्ध क्षेत्र में मुंह दिखावे।

हनुमान के इन वचनों ने राम के हृदय को धीरज दिया और वह आंखें पोंछते हुए बोले :—

राम—प्यारे हनुमान ! सचमुच तुम मुझे सगे भाई के समान प्यारे हो, जाओ परमेश्वर तुम्हारी लाज रखे। और उन्होंने हनुमान की पीठ पर थपकी दे कर उसे लङ्का की ओर रवाना कर दिया।

अञ्जना का पुत्र महावीर हनुमान थोड़ी ही देर में सुषेण को साथ लेकर लङ्का से लौट आया वैद्य प्रवर सुषेण ने लक्ष्मण की दशा देखी तो ठण्डी सांस लेकर सिर हिला दिया।

सुषेण—आह ! लक्ष्मण इस समय चन्द घण्टों का पाहुना है। यह बर्छी जिस को लगी वह तत्काल ही मर गया है, परन्तु न जाने किस शक्ति से अभी तक यह जीवित है, निस्सन्देह ब्रह्मचर्य्य का अद्भुत बल मैं ने आज देखा हैं। अयोध्या नाथ! सूर्य्योदय से पहले यदि संजीवनी नामक बूटी आप यहां मंगवा सकें तो लक्ष्मण बच सकता है, अन्यथा कोई उपाय नहीं।

हनुमान सुषेण के इन वचनों से तुरन्त उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़ कर बोला—

हनुमान—वैद्य राज ! सूर्य्योदय में अभी ६ घण्टे बाकी हैं, शीघ्र इस दास को संजीवनी का पता दीजिए।

सुषेण—भारत वर्ष के उत्तराखण्ड में गढ़वाल नामक एक बहुत बड़ा बन ऊंचे ऊंचे पर्वतों से घिरा हुआ है। उन पर्वतों की चोटियों पर दीपक के समान जलती हुई वनस्पतियां तुम्हें दूर से दिखाई देंगी, वही संजीवनी बूटी है। परन्तु यह स्मरण रखना कि सूर्य्योदय से पहले यहां पहुंचना आवश्यक है।

महावीर ने बिना कुछ और पूछे व सुने राम के चरणों में मस्तक निवाया और विमान पर बैठ कर उड़ने लगे।

अठाईसवां परिच्छेद ।

अंधेरी रात में अनंत जल राशिको पार करता हुआ हनुमान का विमान भारत के तट पर पहुंचा, वहां कुछ क्षण ठहर कर उस ने बन के फल मेवों से अपनी जेबों को भरा और फिर भारत के अनेक देशों पर्वतों मैदानों और नदियों को पीछे छोड़ता हुआ वह उस दुर्गम पर्वत माला की ओर मुड़ा जहां जलती हुई वनस्पतियाँ उसका राह देख रही थीं। संजीवनी का प्रकाश देख कर उसका मृतक समान मन फिर से जी उठा। उस ने विमान को वहाँ उतार दिया और सोचा कि किस को लूं किस को छोडूं। इन बूटियों की लाल पीली नीली और अनेक रङ्गों की जलती हुई आभाने उस को घबरा सा दिया, अन्त में उस ने एक बहुत बड़े टीले को जिस पर सहस्रों बूटियाँ जग रही थीं उखाड़ा और विमान पर रख कर लङ्का की ओर चल पड़ा।

सूर्य्य निकलने में अभी तीन घण्टे बाकी थे, जब कि

हनुमान राम की जन्म भूमि अयोध्या के सिर पर थे। उस समय भरत भगवद्भक्ति में लीन थे। इतने बड़े जलते हुए पर्वत को उन्होंने देखा तो मन में सन्देह हुआ, कि अवश्यमेव अयोध्या पर कोई भारी उपद्रव होने वाला है। यह सोच कर भरत ने फुर्ति के साथ अपने लम्बे धनुष को चढ़ाया और एक तीक्ष्ण बाण उस पर छोड़ा जो विमान के पंखे को तोड़ कर निकल गया था।

लुढ़कता हुआ विमान उस बन में आकर गिरा जहाँ भरत कुटिया बनाए निवास करते थे। वज्रदेह हनुमान को चोट आई और वह हा राम! हा लक्ष्मण! कहते मूर्छित हो गए। भरत ने यह शब्द सुने तो व्याकुल से हो कर वहाँ पहुंचे। जल के छींटों से हनुमान को सचेत किया और बोले:—

भरत—भाई! तुम कहाँ से आए हो, शत्रु समझ कर मैंने तुमको गिराया परन्तु तुहमारे मुख से राम और लक्ष्मन का नाम सुन कर मेरा हृदय मछली के समान तड़प उठा है।

हनुमान—अयोध्या नाथ! आप ने बाण मार कर सूर्य्य वन्श का नाश कर दिया, सूर्य्य निकलने से पहले यदि मैं लङ्का न पहुंच सका तो लक्ष्मण की मृत्यु में नहीं है। लक्ष्मण के मरने से राम ने भी अपने प्राण दे देने का प्रण किया है और

राम की मृत्यु से भगवती सीता निस्संदेह रावण की कैद में ही प्राण दे देगी।

भरत ने हनुमान के मुख से राम और रावण के युद्ध का वृतान्त सुना तो शोक में डूब गये और तुरन्त ही वहाँ से उठ कर अयोध्या में गये और एक अत्यन्त शीघ्र गामी विमान पर हनुमान को बैठा कर बोले—

भरत—हे वीर ! यह विमान तुम को सूर्य्योदय से बहुत पहले लङ्का पहुँचा देगा, जाओ परमात्मा तुम्हारा कल्याण करे; और मेरी ओर से राम को यह सन्देश देना कि यदि चौदह वर्ष से एक दिन भी अधिक आप ने बन में लगाया तो भरत को आप इस संसार में न देखेंगे।

मेघनाद बध
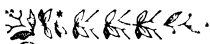
भरत का दिया हुआ शीघ्रगामी विमान वायु मण्डल को चीरता हुआ इस वेग से उड़ने लगा मानों धनुष से किसी ने बाण छोड़ दिया है। हनुमान के आश्चर्य्य का ठिकाना न रहा जब कि उस ने देखा कि वह एकाएक लङ्का में आ गिरा है। भारत के पर्वत नद नदी मैदान बन उपबन नगर गांव और चार सौ कोस का समुद्र उस ने कब पार किया, यह उस ने कुछ न जाना। अपनी छावनी में बैठे हुए उसे ऐसा जान पड़ा मानों भरत ने उसे बाण पर चढ़ा कर लङ्का में फेंक दिया है।

हनुमान के पहुंचते ही राम और सारी वानर सेना के हर्ष का पारावार न रहा। सुषेण वैद्य ने तत्काल सञ्जीवनी को रगड़ा और उसे घोल कर लक्ष्मण के कंठ में उतार दिया और थोड़ी देर बाद ही लक्ष्मण इस प्रकार उठ बैठा मानो कोई प्रगाढ़ नींद से जाग उठा हो।। राम की सेना में आनन्द और उल्लास के बाजे बजने लगे, शंख पूरे गये, गोलों के शब्द से आकाश गूंज उठा।

दूसरे दिन सूर्य्य निकलते ही घमसान का युद्ध होने लगा, मेघनाद और लक्ष्मण के बाणों से लहु की नदी बह निकली, चमकती हुई तलवारें योद्धाओं की आँखें चुंधियाने लगीं। आज महावीर वज्रांग के क्रोध का पारावार न था, बिजली के समान गर्जता हुआ राक्षसी सेना में वह इस प्रकार घूम रहा था मानों अग्नि देवता बन को भस्म करने के लिये तुला बैठा हो। उस के भारी गुर्ज ने सहस्रों राक्षसों को ढेर कर दिया जिधर मुंह करके वह दौड़ता, राक्षसों में भगिदड़ पड़ जाती। उस के हुंकार से असुरों के कलेजे हिल गये। साक्षात् यमराज के समान गुर्ज उठाये हुए उस ने मेघनाद के बड़े बड़े सरदारों को यमलोक का रास्ता दिखा दिया। मेघनाद की सेना कुछ भाग गई कुछ मारी गई और कुछ घायल हो कर राम दुहाई देने लगी। परन्तु वर्षा काल के बादल की तरह मेघनाद अकेला ही खड़ा बाणों की वृष्टि करने लगा। इस पर लक्ष्मण ने बड़े कोप से अपना धनुष उठाया और एक अर्धचन्द्र बाण उस पर छोड़ा, जो उस की भुजा को काट कर रावण के महल में जा गिरा। मेघनाद अचेत हो कर भूमि पर गिर गया और वहीं पर वीर गति को प्राप्त हुआ।

तीसवा परिच्छेद

रावण बध ।

पुत्र शोक से रावण के दुख की कोई थाह न थी। प्रतिकार की आग में जलता हुआ वह भी सारी सेना को लेकर युद्ध क्षेत्र में आ गरजा। उस के युद्ध की धाक सारे संसार पर बैठी हुई। थी सारे भूमण्डल के राजा उस से कांपते थे, रावण के आते ही सहस्रों शङ्ख युद्ध क्षेत्र को गुंजाने लगे। ताड़ के समान लंबे उस राक्षस राज ने आते ही वानरों के रोंए उढ़ाने आरम्भ किए उसकी चुकटी से छूटे हुए बाण सर्पों के समान वानरों को डंसने लगे, उधर रामने जब जानकी के हरने वाले पिशाच को युद्ध भूमि में देखा तो क्रोध से उन का मुख मंडल दोपहर के सूर्य्य के समान तपने लगा। प्रखर रश्मियों के समान बाण छोड़ते हुए राम और लक्ष्मण शत्रु को पीड़ित करने लगे। रावण की सेना व्याकुल हो कर अपनी रक्षा के लिए उस के पीछे खड़ी हो गई। तब क्रोध से लङ्कापति रावण ने अग्नेयास्त्र को छोड़ा, जिस से सारा का सारा युद्ध क्षेत्र अग्निमय हो गया, हाय हाय करते हुए वानर और ऋक्ष जलने लगे। तब

राम ने वारुणास्त्र से उस अग्नि को शान्त किया और युद्धभूमि को जलमय कर दिया। इस प्रकार अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्रों से लाखों मनुष्य मारे गये। लड़ते लड़ते सूर्य्य अस्त हो चला परन्तु दोनों ओर के वीर एक दूसरे पर प्रचण्ड मार मारते न थके। रथ घोड़े छत्र मुकुट सिर पाँव लहु की नदी में बहने लगे। आकाश में देवता लोग इस भयानक युद्ध को देख कर चकित थे, रावण की गर्ज से युद्ध भूमि गूंज रही थी, कि एकाएक राम की प्रत्यंचा से छूटा हुआ एक बाण रावण के मस्तक पर लगा और वह हाथी के समान पृथ्वी पर गिर गया। राक्षसी सेना भाग उठी वानरों की ध्वजाएं आकाश में झूलने लगीं। राम की सेना में बाजे बजने लगे आकाश से देवताओं ने पुष्पों की वर्षा की और इस प्रकार वह मनुष्य जिस के नाम से सारा संसार काँपता था, भूमि पर लेट गया।

राम लक्ष्मण हरण

पर स्त्री के हरण करने वाला लङ्कापति रावण अपने पाप को प्रायश्चित करके सदा के लिए अपनी राक्षसी लीला को समाप्त कर गया था। राम के शिविर में निर्भय हो कर सब के सब सैनिक सो रहे थे किसी को किसी प्रकार की शंका न थी. कि अर्ध रात्रि के समय एक मनुष्य हाथ में माला लिए मस्तक पर तिलक लगाए ओ३म् ओ३म् करता हुआ उस कैम्प के सामने आ खड़ा हुआ जिस में राम और लक्ष्मण सुख से सो रहे थे। लम्बे लम्बे डग मारता हुआ वह मनुष्य अंधकार में साये की तरह आगे बढ़ रहा था, कि एकाएक द्वारपाल ने खड़े होकर पुकारा।

"कौन ?"

"भगवान् रामका परम मित्र रावण का भाई विभीषण ?"

द्वारपाल ने लालटैन को तनिक आगे किया और उसे सिर से पाओं तक देख कर बोला।

द्वारपाल—महाराज ! आप को मैं रोक नहीं सकता परन्तु भगवान इस समय सो रहे हैं ।

विभीषण—द्वारपाल ! तुम्हारा कथन सत्य है परन्तु यदि राम और लक्ष्मण इसी कैम्प में आज रात भर सोए रहे तो उनकी कुशल नहीं है, इसलिए यहां से उन को किसी और कैम्प में ले जाना चाहता हूं । परन्तु सावधान किसी को इस बात का पता न देना । विभीषण की बात से द्वारपाल ने झुक कर उस को प्रणाम किया और अपने स्थान पर चला गया ।

बड़ी तेजी से आगे बढ़ता हुआ विभीषण वहां पहुंचा जहां दोनों भाई घोर निद्रा में पड़े सो रहे थे । उस ने चुपके से अपनी जेब में से एक शीशी निकाली और रुमाल पर थोड़ा थोड़ा उस में से जल छिड़का और चुपके से दोनों भाईयों को सुंघाकर अपने कंधों पर डाल शिविर में से बाहर निकल गया ।

प्रातः काल हुई तो सारा शिविर घबराहट में था राम लक्ष्मण को ढूंढते ढूंढते दोपहर आ गई, एक एक कैम्प देख लिया गया परन्तु सब के सब निराश होकर रह गए, द्वारपाल बेचारा थर थर कांपता था बहुत पूछने पर भी उस ने विभीषण का ही नाम बतलाया ! विभीषण पर सब का संदेह पक्का होगया, शत्रु का भाई होना ही संदेह के लिये एक बड़ा

कारण था। उसी समय हनुमान ने जाकर विभीषण को सारा हाल सुनाया।

विभीषण ने जब यह सुना तो कांप कर रह गया उस का मुख उतर गया और आंसु भरे नेत्रों से द्वारपाल कोबोला—

"द्वारपाल! यदि तुम रात भर सोये नहीं तो ठीक २ कहो, राम के कैम्प में कौन आया था?

द्वारपाल ने हाथ जोड़ कर कहा———

द्वारपाल—महाराज! यदि प्राण दान दें तो मैं कहूं?

विभीषन—हां हां कहो, निर्भय हो कर कहो, राम और लक्ष्मण को हरने वाला पापी अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता।

द्वारपाल—तो महाराज! आप के सिवा दूसरा कोई मनुष्य रात को अन्दर नहीं गया, जब आप आए तो मैं ने आप को रोका परन्तु आप यह कह कर राम और लक्ष्मण दोनों को कन्धे पर उठा कर ले गये कि इन का इस कैम्प में रहना उचित नहीं है।

द्वारपाल के शब्द क्या थे, एक बज्र था। जिस की चोट से विभीषण का सिर चक्कर खा गया। यदि वह पूरे बल से अपने आप को न संभाल लेता तो चक्कर खाकर गिर पड़ता लज्जा के मारे वह पसीना पसीना हो गया। थोड़ी देर उस की

अवस्था दिशा शून्य मूढ़ों के समान रही, परन्तु फिर उसने एक ठण्डी सांस भर कर कहा ——

हनुमान्! तुम महावीर हो जो कार्य्य किसी से न हो सके वह तुम ने किये, इस लिये तुम पर भरोसा रख कर मैं कहता हूं कि राम और लक्ष्मण को मृत्यु के मुख से निकालो, मेरा विश्वास है कि मेरा भाई अहि रावण रात को दोनों भाइयों को उठा कर ले गया है। मैं और वह एक ही क्षण में (जोड़े) युग्म उत्पन्न हुए थे, मेरा और उस का चेहरा मोहरा ऐसा मिलता जुलता है, कि कभी कभी हमारी माता भी भूल जाया करती थी, यह काम अवश्य उसी का है, तुम अभी वहां जाओ और जैसे भी हो सके उन के प्राण बचाओ।

हनुमान के हृदय में राम के वियोग की आग लग रही थी, अहि रावण का नाम सुन कर उस ने क्रोध से दांत पीसे और आकाश में गुर्ज को घुमाता हुआ बोला——

लंकेश विभीषण! अहि रावण को तुम मरा हुआ समझो, राम को हरने वाले का सिर मेरे गुर्ज से चूर चूर होगा।

और वह क्रोध से दांत पीसता हुआ वहाँ से चल निकला।

बत्तीसवां परिच्छेद

राम लक्ष्मण की खोज।

आश्विन मास की कड़कती हुई धूप, दोपहर का समय पानी का कहीं निशान नहीं, परन्तु महावीर हनुमान किसी बात की परवा न करता हुआ उजाड़ में लाल आँधी के बगोले की तरह उड़ता हुआ पटपटे मैदानों को पार करने लगा। कोई तीन घण्टे तक वह अंधा धुन्ध दौड़ चुका होगा कि वह एक पर्वत के निकट पहुंचा। यही पर्वत रावण के भाई अहि रावण का निवास स्थान था। हनुमान ने वहां पहुँच कर थोड़ी देर सांस लिया और फिर पर्वत की एक गुफा के मुख पर पहुँचा। वह बेखटके गुफ़ा के के अन्दर चलने लगा, परन्तु अभी वह थोड़े ही कदम अंदर गया होगा कि एकाएक किसी ने उस के कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा —

"कौन ?"

हनुमान ने उस मनुष्य को सिर से पाँओं तक घूर कर देखा और फिर धीरे से बोला —

हनुमान—मित्र ! तुम्हारे रूप रङ्ग चेहरे मोहरे और वेश से जान पड़ता है कि तुम भी बानर हो, परन्तु बानर होकर राक्षसों की सेवा ? यह आश्चर्य्य है, सच कहो तुम कौन हो ? किस देश से आये हो और तुम्हारा नाम क्या है ?

द्वारपाल—हाँ मैं बानर हूं, महाराज पवन की नगरी से आया हूं और उसी कुल में से हूं मेरा नाम मकरध्वज है, और यह पापी पेट यहाँ खैंच कर ले आया है। यहाँ द्वारापाल का काम करता हूं।

मकरध्वज के इन वचनों से हनुमान ने प्रसन्न होकर अपना मित्रता का हाथ बढ़ाया और फिर उसकी पीठ पर थपकी देकर बोला--

हनुमान--मकरध्वज ! तुम बड़े योग्य पुरुष हो परन्तु स्वतन्त्र देश के स्वतन्त्र मनुष्य होकर परतन्त्रता का जीवन व्यतीत करते हो, यह देख कर मेरा कलेजा फटा जाता है, परन्तु नहीं, इस क्षण से तुम अपने आपको किसी का दास न समझो, अहिरावण को जो कि बानरों का परम शत्रु है, मारकर उसके सिंहासन पर मैं तुम्हें बैठा दूंगा, तुम मुझे अंदर जाने दो

मकरध्वज—महावीर ! आप बड़े होने से मेरे पिता समान हैं, परन्तु स्वामी से विश्वासघात करके मैं बानर जाति को कलंकित नहीं कर सकता। मैं इस समय लोभवश अपने

कर्तव्य से परे नहीं हट सकता, आप बिना मेरे प्राण लिए अन्दर नहीं जा सकते।

हनुमान ने मकरध्वज को बहुत कुछ समझाया परन्तु जब उसने किसी प्रकार भी रास्ता देना स्वीकार न किया तो महावीर ने क्रोध से गुर्ज उठाया। बस फिर क्या था, दोनों में द्वन्द्व युद्ध होने लगा कई घन्टे युद्ध होता रहा, अन्त में मकरध्वज लड़ता लड़ता थक गया और गुर्ज की चोटों से मूर्छित होकर गिर पड़ा। हनुमान ने तुरन्त ही उसको एक वृक्ष के साथ बाँध दिया और तेज़ी से गुफ़ा के अन्दर चला गया। बहुत दूर अंधकार में चलने के पश्चात् उसके कानों में कुछ मनुष्यों के गाने की आवाज आई, जिसे वह वहीं अंधकार में दीवार के साथ सट कर सुनने लगा।

अहिरावण बध।

अयोध्या के अभिमानी बालको! अब अपने इष्ट देवता को स्मरण करो, देवि का पूजन हो चुका, कालिका की मूर्ति को प्रणाम करो अब तुम्हारे शीश बलिदान दिये जांयगे"

राम--मूर्ख राक्षस! जिस परमात्मा ने रावण को मार कर ढेर कर दिया है उससे डरो, आर्य्य पुरुष सिवा उस सर्व व्यापक परमेश्वर के जो घट घट के अन्दर व्यापक है, किसी के आगे सिर नहीं झुकाया करते।

राम के इन शब्दों ने अहिरावण को सिर से पाओं तक आग लगा दी, उसके नेत्र अंगारों की तरह लाल हो गए वह तलवार को अंधकार में घुमाता हुआ बोला——

तुम्हारे बलिदान से कालिका प्रसन्न होगी, और मेरे भाई की आत्मा स्वर्ग में तृप्त होगी, लो अब इस संसार को अच्छी तरह देख लो और अपने इष्ट देव को स्मरण कर लो। यह कहकर उसने अपनी तलवार को कई बार आकाश में घुमाया, दोनों भाइओं ने एक दूसरे की ओर देखा और फ़िर

आँखें बन्द कर ली, परन्तु अहिरावण का हाथ नीचे गिरना चाहता ही था, कि विजली की तरह कड़कता हुआ हनुमान उस पर टूट पड़ा और एकही गुर्ज से उसका कपाल फोड़ दिया, अहिरावण को अकस्मात् गिरते देखकर अञ्जना का पुत्र बाकी राक्षसों को मार मार कर ढेर करने लगा थोड़ी ही देर में उसने सब राक्षसों को मार डाला। और दोनों भाइयों को कुशल पूर्वक अपने शिविर में ले आया।

दीवाली का दिन।

अयोध्यापुरी आज नई दुलहिन की तरह सजी हुई है। लंका का राज्य विभीषण को देकर राम लक्ष्मण और जानकी अञ्जना पुत्र हनुमान के साथ अयोध्या में विराजमान हैं, नगर के नर नारी बाल वृद्ध खुशी के मारे पागल से हो रहे हैं, गली कूचे बाज़ार मकान जिधर देखो अद्भुत शोभा है, अयोध्या देश दीपमाला की तैय्यारियों में लगा हुआ है। कौशल्या केकयी और सुमित्रा हनुमान की माता अंजना तथा अन्य सखियों सहित नाना प्रकार के मंगलाचार में लगी हुई हैं। हनुमान के हर्ष की ता पूछो ही न मानो तीनों लोक का राज्य मिल गया हो। राज दर्बार में स्वर्ण और रत्नों से जड़े हुए सिंहासन पर विराजमान सीता और राम के चरण युगल को पखारता हुआ महावीर अनन्य भक्ति में लीन हो रहा है। श्री रामचन्द्र ने ब्राह्मणों और भिखारियों को सिंहासन पर बैठकर दोनों हाथों से दिल खोल कर दान दिया। भाट और बन्दी लोगों ने भगवान की स्तुति की, जब सब कार्य्य हो चुके तो भगवान राम उठकर बोले--

राम—अयोध्या निवासी भाइयो! आज मैं अपने बड़े पुण्य समझता हूं जो १४ वर्ष के पश्चात् फिर मैं अपनी जन्म

भूमि में अपने पुरवासियों को कुशल पूर्वक देखता हूं। आपके दर्शन करके १४ वर्ष की विपत्तियों को मैं भूल गया हूं। मेरे बनवास में परमेश्वर का हाथ था, उसी परमात्मा ने यह सारी लीला रच कर रावण जैसे प्रतापी राजा को मेरे हाथों मरवाकर हम सब की लाज रखी, मैं आप सब का अति धन्यवाद करता हूं, जिन्होंने मेरे पीछे मेरे प्राणों से प्यारे भाई भरत को राज कार्य्य चलाने में सहायता दी, भाई भरत से अधिक संसार में मुझे कोई भी प्यारा नहीं हां एक मनुष्य है, जिसे मैं उन के समान प्रिय समझता हूं और वह महारानी अञ्जना का पुत्र महावीर हनुमान है। हनुमान के गुण मैं किन शब्दों में बखान करूं; यदि यह वीर मुझे विपत्ति काल में सहायता न देता तो आज अयोध्या निवासी मेरा मुख न देख पाते। हनुमान वीर है, पराक्रमी है, हिमालय के समान अटल धैर्य्यवान है, बुद्धिमान चतुर सुशील और दीन दुखियों का आश्रय है, चारों वेदों का जानने वाला यह अञ्जना पुत्र अपने समान संसार में दूसरा मनुष्य नहीं रखता, इतिहास इस के गुण गान करेगा और आर्य्यजाति की भावी सन्तानें देवताओं के समान इस की पूजा करेंगी, इस के लिए मैं उस की माता अञ्जना को बधाई देता हूं, जिसने अपनी कुक्षि से ऐसे अद्वितीय पुरुष को जन्म दिया, और परमेश्वर से यह प्रार्थना करता हूं कि हे भगवन्! हमारे देश में हमारी जाति में भरत और लक्ष्मण जैसे प्यारे भाई उत्पन्न हों; सीता और अञ्जना जैसी स्त्रियां हों और हनुमान जैसे वज्रांग महावीर प्रतापी क्षत्रिय उत्पन्न हों।

दुःख के बाद सुख, अन्धकार के बाद प्रकाश सुनते हैं, यह संसार का एक अबाधित नियम है। किन्तु जनक नन्दनी महीयसी भगवती सीता के दुःख भरे भाग्य में शायद दुःख ही दुःख बदा है। विवाह के पश्चात् ही पतिदेव के साथ सीता देवी १४ वर्ष के लिये बनवास को गई थी। वह राजपुत्री राज-पुत्र-बन्धु और अति सुकुमारी होकर भी पतिदेव के साथ बन में दुःख उठाती रहीं। ऐसी प्रेम की प्रतिमा पतिव्रता, सचरित्रा निरपराधिनी गर्भवती सीता को महाराज रामचन्द्र ने लोकाप-वाद के भय से वन में निकाल दिया।

इस पुस्तक में सीता देवी के उसी बनबास की हृदय-द्रावक कथा लिखी गई है। आशा है इसको पढ़कर स्त्रियाँ पति-भक्ति की उत्तम शिक्षा ग्रहण करेंगी। भाषा सरल तथा रोचक है। बढ़िया कागज़, सुन्दर छपाई, और अनेकानेक बहु-रंगे चित्रों से सुसज्जित पुस्तक का मूल्य केवल ॥=) सजिल्द १=)

राजपाल-अध्यक्ष सरस्वती आश्रम, लाहौर।

जिन लोगों ने रामायण की कथा सुनी है, उन्हों ने वीर हनुमान का नाम भी सुना ही होगा। हनुमान की वीरता, उस की स्वामी भक्ति तथा बुद्धिमत्ता की चर्चा आज प्रत्येक रामभक्त के हृदय में जीवित है।

जिस वीर रमणी को ऐसे आदर्श-पुत्र की माता कहलाने का सौभाग्य प्राप्त है उसके पवित्र चित्र को कौन नहीं पढ़ना चाहेगा: कौन नहीं इसे पढ़ाकर अपनी कन्या, गृहणी, बधुओं को प्रेम की मूर्ति, भक्ति की कली और पति परायणता की जीती जागती देवी न बनाना चाहेगा? अंजना देवी की जीवन कथा बड़ी ही रोचक तथा शिक्षाप्रद है।

अंजना का पतिव्रत बेजोड़ है। उसकी ज्ञानशक्ति अपूर्व है, उसका उन्नत चरित्र अनुकरणीय है। हमारा विश्वास है कि इसको पढ़कर नारी समाज का बहुत उपकार होगा, जैसी यह पुस्तक लिखी गई है वैसीही छपाई; सफाई और चित्रों से सुशोभित होकर सोने में सुगन्ध हो गई है। मूल्य केवल १॥)

सातवां रत्न

विवाहित-प्रेम

हिन्दी भाषा में बालक और बालिकाओं के लिए उपयोगी पुस्तकों की बड़ी कमी है। इस कमी की तरफ़ ध्यान देकर ही निम्नलिखित शिक्षाप्रद तथा उपयोगी पुस्तकें सुन्दर सचित्र बड़े टाइप में मोटे कागज़ पर छापी गई हैं।

१—बाल महाभारत—महाभारत की लम्बी चौड़ी कथाएं संक्षेप से बालकों की रुचिकर भाषा में लिखी गई हैं। महाभारत की कथा बड़ी शिक्षाप्रद है। इसके पढ़ने से बालक बालिकाओं को बहुत लाभ होने की आशा है। सचित्र पुस्तक १)

२—पारस—शिक्षाप्रद, रोचक तथा भावपूर्ण छोटी छोटी कहानियों की सुन्दर पुस्तक टेक्स्टबुक कमेटी द्वारा स्वीकृत। मूल्य ॥=),

३—बच्चों का प्यारा कृष्ण—श्रीकृष्णचन्द्र जी की जीवन घटनाएं बड़ी विचित्र हैं। उनका बाल्यजीवन बच्चों के लिए बहुत ही शिक्षाप्रद है। भाषा बहुत ही सीधी है। सुन्दर सचित्र पुस्तक का मूल्य ॥),

४—हमारे स्वामी—अर्थात् स्वामी दयानन्द जी की बालोपयोगिनी जीवनी छोटी २ कथाओं में। पुस्तक बड़ी रोचक है। मूल्य ।=),